भारत में जलवायु-प्रेरित विस्थापन और पलायन

पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, ओडिशा, उत्तराखंड और बिहार की कहानियां

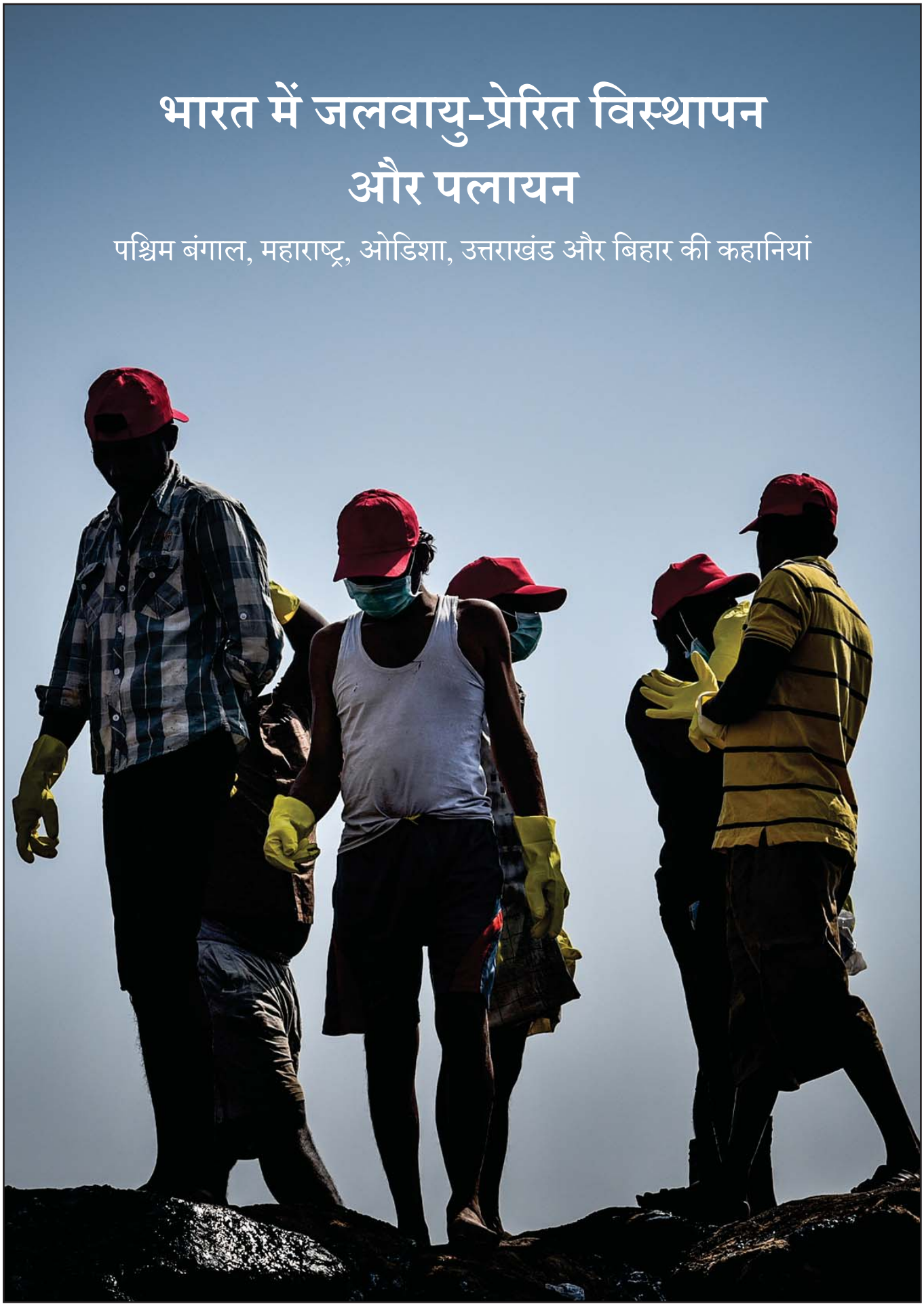

CANSA Climate Action Network South Asia

actionaid

Brot für die Welt

WOTR water gives life

SEEDS

आभार

लेखक –
रिशु गर्ग, दीपक ज़ादे (डब्लूओटीआर, महाराष्ट्र)
जयंत बसु (पश्चिम बंगाल)
हृदयेश जोशी (उत्तराखंड)
संजय वशिष्ठ (बिहार)

संपादक: शैलेन्द्र यशवन्त, जेसिका फलेरियो

ले-आउट और डिज़ाइन: रूपा रामपुरा, इंटरेक्टिव सॉल्यूशन्स

कवर फोटो: प्रवासी मज़दूर, चेन्नई (भारत) – शैलेन्द्र यशवन्त

तारीख: दिसंबर – 2020

आभार :
रिपोर्ट के लेखक इस प्रोजेक्ट की फंडिंग और क्रियान्वयन में सहयोग के लिये साउथ एशियन डेस्क ऑफ ब्रेड (BFtW) की पामेला मेटश्चर, फाइनेंशियल मैनेजमेंट सर्विस फाउंडेशन (FMSF) के अभिषेक दत्ता और संदीप शर्मा के आभारी हैं। एक्शन एड के हरजीत सिंह के फीडबैक से इस रिपोर्ट में काफी मदद मिली।

CONTACT:
संजय वशिष्ठ
निदेशक, क्लाइमेट एक्शन नेटवर्क साउथ एशिया (CANSA)
द्वारा – बांग्लादेश सेंटर फॉर एडवांस स्टडीज़
रोड नंबर – १६/ए ढाका, बांग्लादेश
KvK नंबर (नीदरलैंड): 55304583
वेबसाइट: www.cansouthasia.net
ई मेल: info@cansouthasia.net

TABLE OF CONTENTS

आभार
अध्याय तालिका
संक्षेपाक्षर _____ 1
रिपोर्ट का सारांश _____ 2

1. प्रस्तावना _____ 5
1.1 पलायन के प्रेरक
1.2 कार्यविधि
1.3 संदर्भ

2. सुंदरवन, पश्चिम बंगाल जलवायु परिवर्तन की फ्रंटलाइन _____ 9
2.1 सुंदरवन का जलवायु परिवर्तन परिदृश्य
2.2 सुंदरवन का पलायन परिदृश्य
2.3 पलायन के प्रेरक और प्रभाव: सागर द्वीप से रिपोर्ट
2.4 जन समाधान
2.5 संदर्भ

3. बीड, महाराष्ट्र – सूखे से विस्थापित _____ 18
3.1 बीड का जलवायु परिवर्तन परिदृश्य
3.2 बीड का पलायन परिदृश्य
3.3 पलायन के प्रेरक और प्रभाव: गोखेल गांव से रिपोर्ट
3.4 जन समाधान
3.5 संदर्भ

4. केंद्रपाड़ा, ओडिशा – उफनते समंदर से पलायन _____ 29
4.1 केंद्रपाड़ा का जलवायु परिवर्तन परिदृश्य
4.2 केंद्रपाड़ा का पलायन परिदृश्य
4.3 पलायन के प्रेरक और प्रभाव: सातभाया गांव से रिपोर्ट
4.4 जन समाधान
4.5 संदर्भ

5. अल्मोड़ा, उत्तराखंड – हिमालय के प्रेत गांव _____ 37
5.1 अल्मोड़ा का जलवायु परिवर्तन परिदृश्य
5.2 अल्मोड़ा का पलायन परिदृश्य
5.3 पलायन के प्रेरक और प्रभाव: पहाड़ी ज़िलों से रिपोर्ट
5.4 जन समाधान
5.5 संदर्भ

6. सहरसा, बिहार - बाढ़ का भय _____ **45**
6.1 सहरसा का जलवायु परिवर्तन परिदृश्य
6.2 सहरसा का पलायन परिदृश्य .
6.3 सहरसा ज़िले के महीशी ब्लॉक से रिपोर्ट
6.4 जन समाधान
6.5 संदर्भ

7. भारत में आपदा और विस्थापन – एक नीति विवेचना _____ **52**
7.1 संदर्भ

8. निष्कर्ष और सिफारिशें _____ **61**

9. अनुलग्नक _____ **64**

तस्वीरें

1- जलवायु परिवर्तन शोधक्षेत्र को दर्शाता भारत का मानचित्र _____ **4**
2- सुंदरवन: शोधक्षेत्र को दर्शाता मानचित्र _____ **9**
3- महाराष्ट्र: शोधक्षेत्र को दर्शाता मानचित्र _____ **18**
4- पिछले 30 साल में अष्टी ब्लॉक में वृष्टि बदलाव _____ **19**
5- मौसम विभाग के आंकड़ों (1989-2018) की तुलना _____ **20**
6- गोखेल गांव में पलायन के कारण और प्रभाव: सामुदायिक भागेदारी से बनाया गया समस्या चित्र _ **23**
7- अष्टी गांव में प्रवासियों का आवागमन मानचित्र _____ **24**
8- पलायन कम करने के लिये समुदायों द्वारा मांगी मदद का मूल्यांकन _____ **27**
9- शोधक्षेत्र को दर्शाता ओडिशा का मानचित्र _____ **29**
10-ओडिशा के चक्रवात और बाढ़ वाले क्षेत्र _____ **30**
11-सातभाया गांव का समस्या चित्र _____ **33**
12-अल्मोड़ा ज़िले का मानचित्र _____ **37**
13-सहरसा का मानचित्र _____ **45**
14-ज़िला स्तर पर नवंबर में न्यूनतम तापमान में वृद्धि का औसत (1971-2015) _____ **46**
15-पलायन गंतव्य चयन प्राथमिकता (मैट्रिक्स स्कोरिंग) _____ **48**
16-सहरसा ज़िले का समस्या चित्र _____ **50**

संक्षेपाक्षर

CanESM – द कैनेडियन अर्थ सिस्टम मॉडल
CANSA - क्लाइमेट एक्शन नेटवर्क साउथ एशिया
CMIP5 – कपल्ड मॉडल इंटर-कंपेरिज़न प्रोजेक्ट
COVID 19 – कोरोना महामारी
CVI – कोस्टल वल्नेरिबिलिटी इंडेक्स
DECCMA – डेल्टा वल्नेरिबिलिटी एंड क्लाइमेट चेंज
FAO – खाद्य और कृषि संगठन
ICZM – इंटीग्रेटेड कोस्टल ज़ोन मैनेजमेंट
IDMC – इंटरनल डिस्प्लेसमेंट मॉनिटरिंग कमेटी
ILO – अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन
IMD - भारतीय मौसम विभाग
INCOIS – इंडियन नेशनल सेंटर फॉर ओशिन इंफोर्मेशन सर्विस
INM – इंटीग्रेटेड न्यूट्रिशनल मैनेजमेंट
IPCC – इंटरगवर्मेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज
IPM – इंटीग्रेटेड पेस्ट मैनेजमेंट
MGNREGA – महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी एक्ट
MoU – मेमोरेंडम ऑफ अंडरस्टैंडिंग
NDMA – राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण
NSSO – नेशनल सेंपल सर्वे ऑफिस
PDS – पब्लिक डिस्ट्रिब्यूशन स्कीम
PMFBY – प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना
RHS – रूरल हाउसहोल्ड सर्वे
SC – अनुसूचित जाति
SHG – सेल्फ हेल्प ग्रुप
SRCCL – स्पेशल रिपोर्ट ऑन क्लाइमेट चेंज एंड लैंड
ST – अनुसूचित जनजाति
UNDP – यूनाइटेड नेशन डेवपलमेंट प्रोग्राम
VPKAS – विवेकानंद पर्वतीय कृषि अनुसंधान संगठन
WOTR - वॉटरशेड ऑर्गेनाइजेशन ट्रस्ट

रिपोर्ट का सारांश

भारत एक विशाल देश है, जो जलवायु और पारिस्थितिकी के हिसाब से कई क्षेत्रों में फैला हुआ है। इस कारण यहां लोगों पर जलवायु परिवर्तन के सबसे खराब प्रभावों का ख़तरा है। भारत की 130 करोड़ जनसंख्या में से 67% गांवों में रहते हैं और जलवायु के हिसाब से संवेदनशील कृषि, मछलीपालन और वानिकी जैसे सेक्टरों में काम करते हैं।

पिछले दो दशकों में बार-बार पड़े सूखे के साथ-साथ लू, बाढ़, चक्रवात और समुद्र के बढ़ते जलस्तर जैसी तीव्र मौसमी घटनाओं ने कृषि क्षेत्र को तबाह किया है और जलवायु प्रभावित सुदूर क्षेत्रों से शहरों की ओर पलायन बढ़ाया है।

जलवायु-प्रेरित विस्थापन और पलायन की कोई सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत परिभाषा नहीं है लेकिन मोटे तौर पर इसका अभिप्राय किसी क्षेत्र में जलवायु और मौसम में हुये अकस्मात और निरंतर बदलाव के कारण लोगों का वहां से किसी दूसरी जगह जाना है। इसमें अस्थायी या स्थायी, मौसमी और एकाकी के साथ स्वैच्छिक और मजबूरी में हुआ विस्थापन शामिल है।

एक्शन एड और क्लाइमेट एक्शन नेटवर्क साउथ एशिया द्वारा किये गये एक ताज़ा अध्ययन में अनुमान लगाया गया है कि अगर दुनिया के सभी देश ग्रीन हाउस गैसों पर नियंत्रण के लिये अपने वादे और तय लक्ष्य पूरा कर भी लेते हैं तो भी दक्षिण एशिया के पांच देशों में 2030 तक करीब 3.37 करोड़ लोग विस्थापित होंगे और 2050 तक इन विस्थापितों की संख्या 6.29 करोड़ होगी। जलवायु के कारण आपदाओं से भारत में ही 2050 तक करीब 4.5 करोड़ लोग अपने घरों से विस्थापित होंगे जो अभी विस्थापितों की संख्या का 3 गुना है। वर्तमान वैश्विक वादों और तय लक्ष्य से हम धरती की तापमान वृद्धि 2.1 डिग्री और 3.3 डिग्री तक ही नियंत्रित कर सकते हैं।[1]

तटीय ओडिशा में किसान पलायन कर रहे हैं क्योंकि समुद्र के बढ़ते जल स्तर ने धीरे धीरे उनके खेत डुबा दिये हैं, और मछुआरे विस्थापित हो रहे हैं क्योंकि चक्रवाती तूफानों ने उनकी नावें और दूसरे उपकरण छीन लिये हैं। पूर्वी सीमा में बसे मशहूर सुंदरवन में जलवायु परिवर्तन प्रभाव से तबाह हो चुकी परंपरागत जीविका और मूलभूत ढांचे के कारण लोग गरीबी के चक्र में फंस गये हैं। उत्तराखंड के पहाड़ी ज़िलों में वर्षा के बिगड़ते ग्राफ और गिरते भू-जल स्तर ने मैदानी इलाकों की ओर पलायन की रफ्तार बढ़ाई है। बिहार के सहरसा ज़िले में, विस्थापित हो कर नये स्थान पर बसा एक समुदाय बाढ़ से त्रस्त है।

जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न आपदायें, विस्थापन और पलायन महिलाओं पर बोझ को कई गुना कर देता है। घरेलू काम के साथ खेती में खटना उन्हें हर रोज़ 12 से 14 घंटे व्यस्त रखता है। जब परिवार के पुरुष पलायन कर जाते हैं तो महिलाओं काम के साथ बच्चों और परिवार के सदस्यों की देखभाल की ज़िम्मेदारी भी आ जाती है। मातृ-शक्ति द्वारा कृषि कार्यों का निर्वहन इस शोध में हर जगह देखा गया है।

जलवायु प्रेरित पलायन सामाजिक और सार्वजनिक इन्फ्रास्ट्रक्टर पर भी प्रभाव डालता है जिससे उस क्षेत्र का विकास सूचकांक सीमित रह जाता है। लोग पलायन करते हैं तो ज़मीन से उनका रिश्ता टूट जाता है। परिणामस्वरूप पशुपालन, मुर्गीपालन और डेरी जैसे रोज़गार, जो सामाजिक तानेबाने के साथ जुड़े हैं, पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

भारत की 60% कृषि वर्षा पर निर्भर है और 80% छोटे किसान हैं इसलिये पलायन को नियंत्रित करने के लिये जलवायु-परिवर्तन प्रतिरोधी कार्यविधि को उपयुक्त माना जाता है। जलस्रोतों को बचाना, वर्षा जल संग्रह और मृदा संरक्षण के साथ-साथ जीविकोपार्जन के विविध तरीके, फसल बीमा, जलवायु परिवर्तन प्रतिरोधी फसलों की किस्मों को बढ़ावा, किसानी का सहकारी मॉडल, आसान कर्ज़ की उपलब्धता, स्व सहायता समूहों और महिला कृषि समूहों का सशक्तीकरण, महिला किसानों को विक्रय संबंधी और तकनीकी पेचीदगियों की ट्रेनिंग क्लाइमेट प्रभावों के कारण पलायन कर रहे लोगों को रोकने के लिये न्यूनतम आधारभूत ज़रूरतें हैं।

पलायन के बाद अपने नये बसेरे में प्रवासियों को जिन दिक्कतों का सामना करना पड़ता है उनमें ज़मीनी स्तर का भेदभाव, शहरी

1 https://cansouthasia.net/costs-of-climate-inaction-displacement-and-distress-migration/

इलाकों और झुग्गियों में निम्न जीवन स्तर, अधिकारों से वंचित रहना, मूलभूत सुविधाओं का अभाव, हिंसा और कानूनी मदद न मिलना सामान्य दिक्कतें हैं। इन जगहों पर रह रहे विस्थापितों को स्वास्थ्य, शिक्षा, निवास और अन्य जन सुविधाओं को दिलाने की नीति में सुधार की आवश्यकता है।

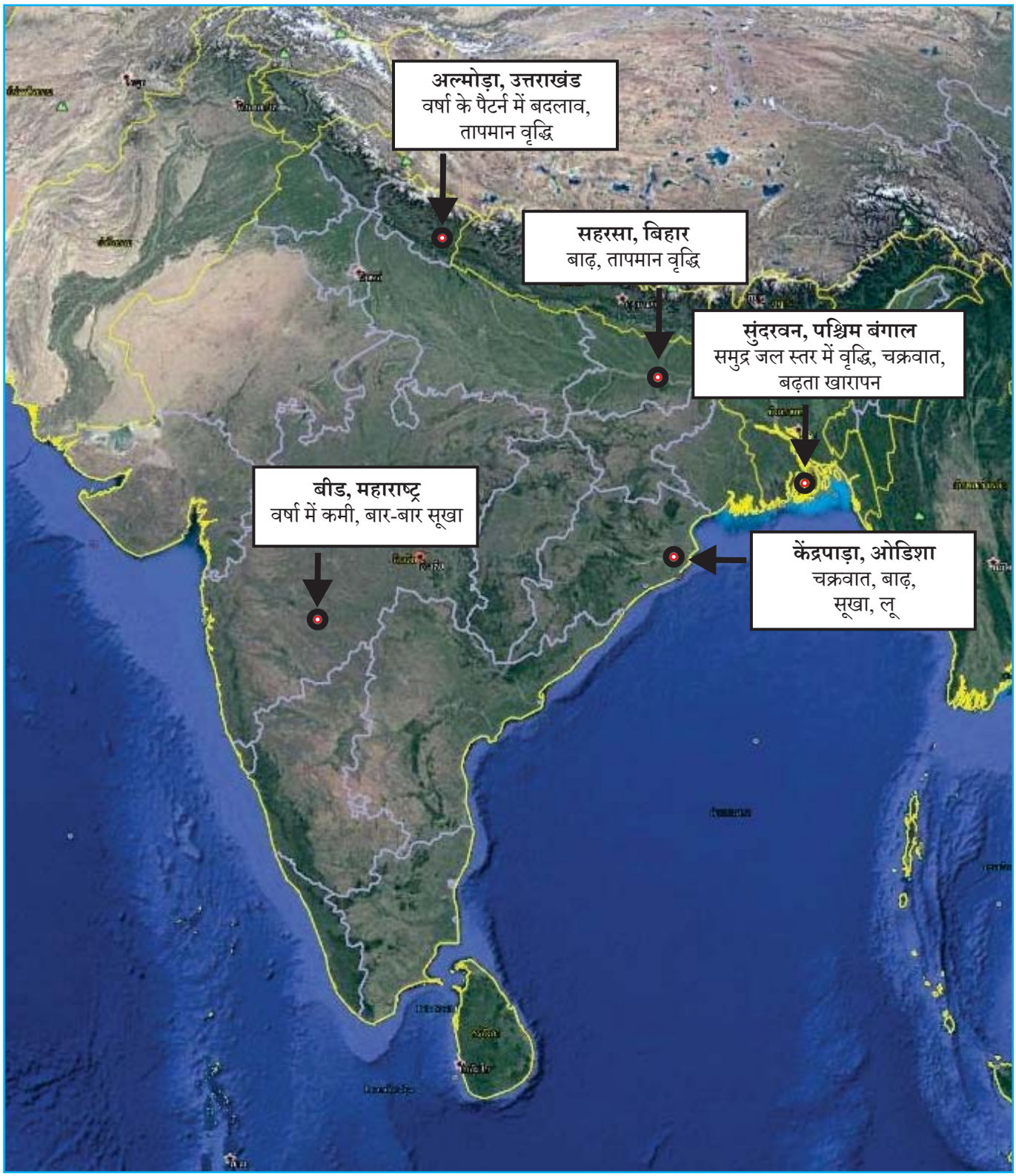

चित्र – 1 जलवायु परिवर्तन शोधक्षेत्र को दर्शाता भारत का मानचित्र

1 प्रस्तावना

भारत में पलायन एक जटिल स्थिति है जो सामाजिक, सांस्कृतिक, पर्यावर्णीय,आर्थिक और क्षेत्रीय जैसे कई कारकों से जुड़ी हुई और उन पर निर्भर भी है।

भारत में हर साल 10 करोड़ लोग जीविका के लिये चलायमान रहते हैं जो भारत की कुल श्रम शक्ति (लेबर फोर्स) का पांचवां हिस्सा है।[1] ये 10 करोड़ लोग अपने घरों को एक विशाल रकम भेजते हैं जो भारत के कुल स्वास्थ्य और शिक्षा बजट का 8 गुना है।[2]

हालांकि पलायन लोगों के लिये, खासतौर से जो अर्धशुष्क इलाकों में रहते हैं, जीने का एक तरीका है लेकिन पिछले दो-तीन दशकों में इसका आकार और पैटर्न दोनों बदले हैं। ग्रामीण भारत के लोग अब खतरे से निबटने, आकांक्षाओं को पूरा करने और आमदनी के लिये अधिक से अधिक एक से दूसरी जगह जाने की रणनीति अपना रहे हैं (सिंह & बसु 2019)।[3] साल 2012 से 2016 के बीच 5 सालों में सालाना 90 लाख लोग शिक्षा या रोज़गार के लिये एक राज्य से दूसरे राज्य में गये। यह 2001-11 के बीच हुये अन्तर्राज्यीय विस्थापन (2011 की जनगणना के मुताबिक) का दो-गुना है जिसमें आंतरिक प्रवासियों की संख्या (राज्यों की बीच और राज्यों के भीतर पलायन को मिलाकर) 13.9 करोड़ थी।[4]

क्लाइमेट के कारण देश के भीतर प्रवासी तेज़ी से जलवायु परिवर्तन का मानवीय चेहरा बन रहे हैं। विश्व बैंक की एक रिपोर्ट - "ग्राउंडस्वेल – प्रिपेरिंग फॉर इंटर्नल क्लाइमेट माइग्रेशन" कहती है कि अगर तुरंत वैश्विक और राष्ट्रीय क्लाइमेट एक्शन नहीं हुआ तो 2050 तक सब-सहारा अफ्रीकी देशों, दक्षिण एशिया और लैटिन अमेरिकी देशों की सीमाओं के 14 करोड़ से अधिक लोग विस्थापित होंगे।[5]

कुल संख्या की बात करें तो दक्षिण एशिया के भीतर भारत में आपदा के कारण विस्थापन का स्तर सर्वोच्च है जो पूरी दुनिया में सबसे अधिक विस्थापन वाले आंकड़ों में से एक है। साल 2008 और 2019 के बीच करीब 36 लाख लोग हर साल विस्थापित हुये और सबसे अधिक प्रभाव मॉनसून के दौरान हुआ।[6]

1970 और 2012 के बीच भारत की पूर्वी समुद्र तटरेखा पर 200 चक्रवाती तूफान आये जिससे जान-माल और रोज़गार की क्षति हुई। क्लाइमेट सेंट्रल की रिपोर्ट [7] के मुताबिक समुद्र जल स्तर उठने के कारण उड़ीसा और पश्चिम बंगाल को "विशेष रूप से खतरा" है और इससे आने वाली बाढ़ तटवर्ती इलाकों में 3.6 करोड़ लोगों को प्रभावित कर सकती है। साल 2009 में आये आइला तूफान के बाद सुंदरवन डेल्टा में रह रहे 45 लाख लोगों के लिये बड़े स्तर पर पलायन ही हालात से निपटने का तरीका है। (जनगणना - 2011)

लघु कथाओं से मिले प्रमाणों ने विस्थापन और निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर को बार-बार रेखांकित किया है और अगर सराकारें समावेशी और सतत विकास चाहती हैं तो उन्हें इसे रोकने के उपायों पर निवेश करना होगा। (आईडीएमसी – 2020)[8]

एक्शन एड और क्लाइमेट एक्शन नेटवर्क साउथ एशिया द्वारा किये गये एक ताज़ा अध्ययन में अनुमान लगाया गया है कि अगर दुनिया के सभी देश ग्रीन हाउस गैसों पर नियंत्रण के लिये अपने वादे और तय लक्ष्य पूरा कर भी लेते हैं तो भी दक्षिण एशिया के पांच देशों में 2030 तक करीब 3.37 करोड़ लोग विस्थापित होंगे और 2050 तक इन विस्थापितों की संख्या 6.29 करोड़ होगी। जलवायु के कारण आपदाओं से भारत में ही 2050 तक करीब 4.5 करोड़ लोग अपने घरों से विस्थापित होंगे जो अभी विस्थापितों की संख्या का 3 गुना है। वर्तमान वैश्विक वादों और तय लक्ष्य से हम धरती की तापमान वृद्धि 2.1 डिग्री और 3.3 डिग्री तक ही नियंत्रित कर सकते हैं।[9]

संयुक्त राष्ट्र के खाद्य और कृषि संगठन (FAO) के मुताबिक[10] जब सूखा पड़ता है तो कृषि पहला और सबसे अधिक प्रभावित होने वाला सेक्टर बनता है जो इसके 80% सीधे प्रभावों को झेलता है जिनमें खाद्य उत्पादन, खाद्य सुरक्षा और ग्रामीण रोज़गार शामिल पर पड़ने वाला चौतरफा असर शामिल है। सूखे से भुखमरी और पलायन, के साथ प्राकृतिक संसाधनों की क्षति हो सकती है और यह ग्रामीण समुदायों के लिये बहुत कठोर हालात पैदा कर अर्थव्यवस्था को गंभीर चोट पहुंचा सकता है।

भारत का मानव सूचकांक सर्वे पलायन के फैसले से जुड़े कई सामाजिक आर्थिक कारकों को रेखांकित करता है: किसी घर की

आय, सूचना की उपलब्धता, स्रोत और गन्तव्य पर समुदाय का नेटवर्क। अंतर्राज्यीय पलायन में कई प्रशासकीय बाधायें भी होती हैं जैसे काम और शिक्षा के लिये तय प्रावधान और गन्तव्य पर सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के साथ – साथ क़ानूनी और अन्य अधिकारों का न मिल पाना।[11]

इसका अधिक प्रभाव छोटे और उन किसानों पर पड़ता है जिनके पास सिंचाई की सुविधा नहीं है। विश्व बैंक की गणना के मुताबिक प्राकृतिक आपदायें पूरी दुनिया में हर साल 2.6 करोड़ लोगों को विस्थापित कर रही हैं और इससे वैश्विक अर्थव्यवस्था को हर साल $ 52,000 करोड़ की क्षति हो रही है।[12]

अनुमान है कि जलवायु कारणों से होने वाला पलायन 2050 तक 20 करोड़ के आंकड़े को पार कर जायेगा। विश्व बैंक के मुताबिक अगले 13 सालों में 40% भारतीय शहरी इलाकों में आ जायेंगे या 30 करोड़ लोग उन 15 करोड़ लोगों में जुड़ जायेंगे जो पहले ही देश के 53 शहरों में रह रहे हैं। साल 2047 तक देश के 65% लोग शहरी बसावटों में होंगे। शहरों की ओर होने वाला यह विशाल पलायन या तो एक सिरदर्द बन जायेगा या फिर ये भारत के कायान्तरण करने हेतु एक अवसर होगा।[13]

इसके बावजूद गन्तव्य पर प्रवासियों की समस्या ने लोगों का इतना ध्यान अपनी ओर कभी नहीं खींचा जितना पिछले कुछ वक्त में हुई दो बड़ी घटनाओं ने खींचा है। पहली – 2018 में केरल में आई बाढ़ और दूसरी हाल में कोविड-19 महामारी के कारण पैदा हालात ने। केरल, जहां देश के कई हिस्सों से प्रवासी आते हैं, में साल 2018 में अभूतपूर्व बाढ़ आई। इसकी वजह से असम, ओडिशा और तमिलानाडु जैसे राज्यों से यहां आये श्रमिकों को रातों रात अपने घर वापस भागना पड़ा। इनमें से ज़्यादातर परिवारों को उनकी राज्य सरकारों द्वारा दिये गये ट्रेन के भाड़ों के अलावा कोई सहयोग नहीं मिला।[14]

इसी तरह कोविड-19 महामारी के कारण जब अचानक पूरे देश में लॉकडाउन की घोषणा हुई तो प्रवासियों का अपने घरों की ओर पलायन देखा गया। मीडिया में अपने घर लौटते हुये इन प्रवासियों को हो रहे कष्ट और वेदना की द्रवित कर देने वाली रिपोर्ट्स दिखीं। ट्रांसपोर्ट सुविधाओं के अभाव में कई लोगों को चिलचिलाती धूप में खाली पेट सैकड़ों किलोमीटर पैदल चलना पड़ा। कुछ प्रवासियों की घर लौटते हुये रास्ते में मौत भी हुई।

1.1 पलायन के कारक

हमेशा से ही भारत की जनसंख्या का बड़ा हिस्सा कृषि पर निर्भर रहा है। आज़ादी के बाद से खाद्यान्न का उत्पादन कई गुना बढ़ा है। कभी अनाज़ आयात करने वाले देश भारत ने कृषि क्षेत्र में लम्बा रास्ता तय किया है और अब वह खाद्यान्न निर्यात करता है। हालांकि देश की तीन-चौथाई कृषि भूमि सिंचाई के लिये वर्षा पर निर्भर है लेकिन देश की 60% जनसंख्या की जीविका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि से जुड़ी है। इसलिये यह समझा जा सकता है कि देश की करीब 60 करोड़ आबादी की जीविका निर्धारित करने में मॉनसून का अहम रोल है।[15]

इसलिये भारत के सूखाग्रस्त क्षेत्रों से – जहां वर्षा आधारित सिंचाई है - ग्रामीण पलायन के पीछे यह सबसे प्रमुख कारणों में एक है।

हालांकि पलायन देश के विभिन्न हिस्सों से होता है लेकिन कुछ क्षेत्र और राज्यों, या राज्य के किसी हिस्से ये पलायन का यह पैटर्न प्रमुखता से दिखता है। ज़्यादातर यह पलायन सूखा, बाढ़ और चक्रवाती तूफान जैसे क्लाइमेट जनित कारणों से होता है।

देश के कई हिस्सों में और खासकर ग्रामीण जनता के लिये जिसके पास सीमित संसाधन हैं, मौसमी पलायन (सीज़नल माइग्रेशन) हर साल की बात है। चिन्मय तुम्बे अपनी पुस्तक 'इंडिया मूविंग, अ हिस्ट्री ऑफ माइग्रेशन (2018)' में कहते हैं – "मौसमी प्रवासियों - जो पलायन करने वाली भारत की सबसे असुरक्षित धारा है – में करीब 5% गृहस्थ प्रभावित होते हैं और 1 करोड़ गरीब और भूमिहीन हैं। ज़्यादातर अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित जाति के लोग हैं जिनमें एक-तिहाई कंस्ट्रक्शन क्षेत्र में लगे हैं। कोई पांचवा हिस्सा कृषि और छठा हिस्सा मैन्युफैक्चरिंग में है।"

जलवायु परिवर्तन के धीमे और तेज़ गति के प्रभावों से हो रही आपदाओं की बढ़ती संख्या, शमन (मिटिगेशन) और अनुकूलन (एडाप्टेशन) के लिये उठाये जा रहे दीर्घकालिक प्रयासों में बाधा डाल सकती हैं। तमाम ग्रामीण क्षेत्र, जो पलायन से प्रभावित हो

सकते हैं, वहां कृषि, पशुपालन, बागवानी और मछलीपालन जैसे काम-धन्धे चलते हैं। संसाधनों की चुनौती और जलवायु परिवर्तन प्रभावों से बढ़ती लागत के कारण अब खाद्यान्न उत्पादन का भविष्य इस बात पर निर्भर करेगा कि हम कैसे उन्नत और रोगाणु प्रतिरोधी बीजों के बजाय एकीकृत प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन की ओर जाते हैं।[16]

जलवायु परिवर्तन और भूमि पर इंटरगवर्मेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज (IPCC) की विशेष रिपोर्ट कहती है, "भू-क्षरण और जलवायु परिवर्तन पहले ही अनिश्चित रोज़गार में लगे लोगों के लिये ख़तरे को और बढ़ाने का काम करता है जिससे ये लोग भीषण क्लाइमेट जनित आपदाओं की चपेट में रहते हैं जिसके परिणामस्वरूप इन्हें ग़रीबी और खाद्य असुरक्षा का सामना करना पड़ता है और कभी ये विस्थापित भी होते हैं और इन्हें संघर्ष के साथ सांस्कृतिक धरोहरों का नुकसान झेलना पड़ता है।"[17]

लोगों के मूवमेंट से गृहस्थ का स्वभाव बदल रहा है। इसका असर जोखिम प्रबन्धन करने के उसके तौर तरीकों पर भी पड़ता है क्योंकि जलवायु परिवर्तन से लड़ने के लिये अनुकूलन के उपाय कितने कारगर होंगे यह उस पर प्रभाव डालता है।[18]

संयुक्त राष्ट्र कृषि एवं खाद्य संगठन (FAO) का कहना है कि मृदा क्षरण की मौजूदा रफ्तार को देखते हुये हम केवल अगले 60 सालों तक ही फसल उगा पायेंगे। हर साल हम 2,400 करोड़ टन उपजाऊ मिट्टी और 1.2 करोड़ हेक्टेयर में फैली भू-परत को खो देते हैं।[19]

जलवायु परिवर्तन और भूमि पर IPCC की विशेष रिपोर्ट (SRCCL-2019) बेहतर भू-प्रबन्धन से जलवायु परिवर्तन से निपटने में मददगार होता है हालांकि ये समस्या का इकलौता समाधान नहीं है। जनसंख्या में वृद्धि और वनस्पतियों पर जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभावों को देखते हुये ये ज़रूरी है कि खाद्य सुरक्षा के लिये ज़मीन की उत्पादक क्षमता बनी रहे। जब भूमि का क्षरण होता है उसकी उत्पादन क्षमता घट जाती है। फिर उस पर सीमित फसलें ही उगती हैं और मिट्टी की कार्बन सोखने की ताकत कम हो जाती है। इससे जलवायु परिवर्तन में बढ़ोतरी होती है और जलवायु परिवर्तन विभिन्न तरीकों से भूमि-क्षरण को बढ़ाता है।

आईपीसीसी की जलवायु परिवर्तन और भूमि (SRCCL, 2019) रिपोर्ट बताती है कि बेहतर भू-प्रबंधन से जलवायु परिवर्तन से निपटने में मदद मिलती है लेकिन यह एकमात्र और सम्पूर्ण समाधान नहीं है। आबादी बढ़ रही है और जलवायु परिवर्तन का वनस्पतियों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। इसलिये खाद्य सुरक्षा के लिये ज़मीन का उपजाऊ और उत्पादक बने रहना ज़रूरी है। जब ज़मीन का क्षरण होता है तो इसकी उत्पादकता घट जाती है और इसमें सीमित फसल ही उगाई जा सकती है। इसके अलावा मिट्टी की कार्बन सोखने की क्षमता भी कम हो जाती है। यह जलवायु परिवर्तन को बढ़ाता है और क्लाइमेट चेंज के कारण भू-क्षरण बढ़ता है।

1.2 कार्यप्रणाली

यह अध्ययन काफी हद तक मूल निवास स्थान या गन्तव्य पर रह रहे उन लोगों के अनुभव और बयानों पर आधारित है जिन्हें या तो पलायन करना पड़ा है, या पलायन से प्रभावित हुये हैं। इस शोध के लिये लोगों के साक्षात्कार, गवाही, केस स्टडी दस्तावेज़ीकरण, साझा रिसर्च, मीडिया रिपोर्ट, सर्वे, जनगणना जैस मुक्त-स्रोत प्रकाशन, NSSO राउण्ड और आर्थिक सर्वे रिपोर्ट का इस्तेमाल किया गया।

जलवायु परिवर्तन के असर वाले 5 क्षेत्रों की पहचान की गई जिनमें पश्चिम बंगाल का सुंदरवन, महाराष्ट्र का बीड ज़िला, ओडिशा का केंद्रपाड़ा, उत्तराखण्ड का अल्मोड़ा और बिहार का सहरसा शामिल है। इन हॉट-सपॉट्स का चयन करते समय यह सुनिश्चित किया गया कि ये क्षेत्र सूखा, समुद्र जल स्तर वृद्धि, बाढ़ और चक्रवाती तूफान जैसी आपदाओं की ज़द में हैं और यह भी कि इनके माइग्रेशन पैटर्न में इसका असर दिखता है।

1.3 References

1 Migration and Human Development in India, Priya Deshingker & Shaheen Akter, United Nations Development Programme, Research Paper, April 2009/13
2 https://m.economictimes.com/markets/stocks/news/indias-real-economic-dynamo-a-silent-force-that-brings-in-2-of-gdp/articleshow/68886500.cms
3 Singh, C, &Basu, R. (2019). Moving in and out of vulnerability: Interrogating migration as an adaptation strategy along a rural-urban continuum in India. Geographical Journal, 15-18
4 https://www.livemint.com/Politics/bK0wi486ff4HkV3NDcCTVI/Economic-Survey-2017-says-labour-migration-higher-than-earli.html
5 Kumari Rigaud, Kanta, Alex de Sherbinin, Bryan Jones, Jonas Bergmann, Viviane Clement, Kayly Ober, Jacob Schewe, Susana Adamo, Brent McCusker, Silke Heuser, and Amelia Midgley. 2018. Groundswell: Preparing for Internal Climate Migration. Washington, DC: The World Bank.
6 https://www.internal-displacement.org/global-report/grid2020/
7 https://climatecentral.org/pdfs/2019CoastalDEMReport.pdf
8 https://www.internal-displacement.org/sites/default/files/inline-files/20180608-idmc-economic-impacts-intro_0.pd
9 https://cansouthasia.net/costs-of-climate-inaction-displacement-and-distress-migration/
10 FAO (2018) 2017 - The impact of disasters and crises on agriculture and food security. Available at: http://www.fao.org/3/I8656EN/i8656en.pdf
https://cansouthasia.net/costs-of-climate-inaction-displacement-and-distress-migration/
11 India's Internal Labor Migration Paradox, Finance, Competitiveness, and Innovation Global Practice February 2018.
12 The World Bank - Results Brief - Climate Insurance (2017) Available at https://www.worldbank.org/en/results/2017/12/01/climate-insurance
13 India's Urban Moment: The Pressing Need for a New Thought Architecture; Swaminathan Ramanathan; ORF Occasional Paper, June 2019.
14 https://www.thehindu.com/news/national/kerala/floods-impacting-migrant- workers/ article24753496.ece
15 130 crore * 0.60 * 0.75 = 60 Crore
16 Nawab Ali, Checking rural migration through enhancing farmers income and improving their living conditions, Indian Farming 68(01): 07–11; January 2018
17 Climate Change and Land- An IPCC Special Report on climate change, desertification, land degradation, sustainable land management, food security, and greenhouse gas fluxes in terrestrial ecosystems (Jan 2020) [Page 4; IPCC-SCCRL].
18 Migration as a driver of changing household structures: implications for local livelihoods and adaptation, Chandini Singh,
School of Environment and Sustainability, Indian Institute for Human Settlements, Bangalore, India
19 http://www.fao.org/soils-2015/events/detail/en/c/338738/

2 सुंदरवन, पश्चिम बंगाल – जलवायु परिवर्तन की फ्रंट लाइन

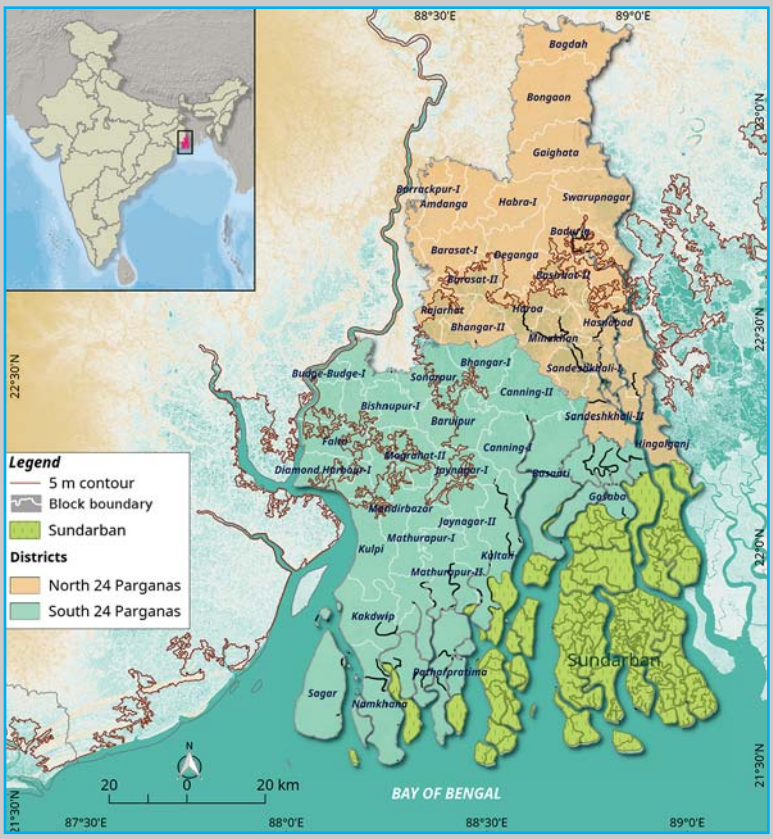

चित्र 2: रिसर्च लोकेशन को दर्शाता सुंदरवन का मानचित्र

सुंदरवन डेल्टा भारत-बांग्लादेश सीमा पर सन्निहित 19000 वर्ग किलोमीटर में फैला है और यह दुनिया में सबसे बड़ा मैंग्रोव फॉरेस्ट कहा जाता है जहां भारत,चीन, नेपाल और भूटान से नदियां आकर समुद्र में मिलती हैं। यह दुनिया का सबसे बड़ा बाघों का बसेरा भी है। करीब 10,260 वर्ग किलोमीटर में फैले मैंग्रोव टाइगर हैबिटाट का 60% हिस्सा बांग्लादेश में है और बाकी भारत के हिस्से वाले पश्चिम बंगाल राज्य में हैं।

भारतीय सुंदरवन में कुल 104 द्वीप हैं जिनमें से 54 में आबादी रहती है। ये बसावट वाले द्वीप बंगाल के दो ज़िलों उत्तर 24 परगना और दक्षिण 24 परगना में पड़ते हैं।[1] यह अद्वितीय इकोसिस्टम दुनिया के सबसे संवेदनशील दलदली इलाकों में है और यूनेस्को की विश्व धरोहरों में शुमार है।

2.1 सुंदरवन का जलवायु परिवर्तन परिदृश्य

हालांकि बंगाल की खाड़ी से लगा होने के कारण सुंदरवन में एक्सट्रीम वेदर की घटनायें नई बात नहीं है लेकिन पिछले कुछ दशकों में ऐसी आपदायें बार बार आ रही हैं और इनकी ताकत काफी बढ़ गई है।

सुंदरवन में समुद्र जल स्तर वृद्धि दुनिया के औसत से अधिक है जिससे तेज़ी से तट का त्वरित गति से क्षरण (इरोज़न) हो रहा है। DECCMA के कंट्री लीड और जाधवपुर विश्वविद्यालय में स्कूल ऑफ ओशिनोग्राफिक साइंसेज़ के निदेशक प्रो सुगाता हज़रा कहते हैं कि सुंदरवन में सालाना 3.14 मिमी समुद्र जल स्तर बढ़ रहा है जो वैश्विक औसत से अधिक है। समुद्र जल स्तर में वृद्धि डेल्टा के धंसने की प्रक्रिया को भी काफी प्रभावित करती है जो कि द्वीपों का आकार और लैंड यूज़ बदलाव तय करता है।[2]

विश्व बैंक की एक ताज़ा रिपोर्ट के मुताबिक 1904 और 2016 के बीच भारत-बांग्लादेश सीमा के दोनों ओर फैले सुंदरवन का क्षेत्रफल 450 वर्ग किलोमीटर कम हुआ है।[3] लोहाछोरा, बेडफोर्ड

और सुपरभंगा द्वीप कई दशक पहले नदी में समा गये। घोड़ामारा द्वीप धीरे धीरे नदी में धंस रहा है। इसका लगभग 50% हिस्सा पिछले पांच दशकों में भूमि क्षरण और जल स्तर में वृद्धि जैसे कारकों से नदी में समा चुका है। जम्मूद्वीप का क्षेत्रफल 75% कम हो गया है और मौसुनी द्वीप 20% सिकुड़ चुका है।

वर्ल्ड वाइल्डलाइफ फंड (डब्लू डब्लू एफ) का एक अध्ययन बताता है कि पिछले पांच में से चार दशकों यानी 1970 सा 2009 के बीच, भारत के हिस्से वाले सुंदरवन में कुल 210 वर्ग किलोमीटर ज़मीन पानी में समा गई जो कि कोलकाता शहर के क्षेत्रफल से अधिक है और एक तिहाई नुकसान पिछले 10 सालों में हुआ है जो कि इस क्षेत्र में क्लाइमेट चेंज के बढ़ते प्रभाव को दिखाता है।[4]

भारतीय मौसम विभाग का एक दूसरा अध्ययन बताता है कि पिछली एक शताब्दी में नवंबर – वह महीना जब बहुत ताकतवर तूफान आते हैं - में भारतीय सुंदरवन में आने वाले तीव्र चक्रवातों की संख्या में 26% बढ़ी है। इस अध्ययन में सिमुलेशन मॉडल की मदद से यह पूर्वानुमान किया गया है कि "2050 तक सुंदरवन में मॉनसून के बाद बंगाल की खाड़ी में होने वाले ट्रापिकल विक्षोभ (ऊष्ण कटिबंधीय गड़बड़ियां) की आवृत्ति यानी फ्रीक्वेंसी 50% बढ़ जायेगी" और इस बदलाव को "यहां वातावरण में जमा हुई ग्रीन हाउस गैसों के कारण जलवायु परिवर्तन" से जोड़ा है।[5]

विश्व बैंक की स्टडी से कहीं अधिक विचलित कर देने वाली यह बात निकलती है कि समय बीतने के साथ "चक्रवात अब पूर्व की ओर खिसक रहे हैं और इनकी अधिकतम मार अब उत्तरी उड़ीसा और पश्चिम बंगाल के सुंदरवन क्षेत्र में है।"[6]

साल 2009 में जब चक्रवाती तूफान आइला सुंदरवन से टकराया तो यह वन क्षेत्र के पास – जहां इसकी सबसे तीव्र मार पड़ी थी – 25% घरों को बहा ले गया। खारा पानी भर जाने से कृषि भूमि बर्बाद हो गई और पेयजल के स्रोत प्रदूषित हो गये।[7]

साल 2019 में आये चक्रवात बुलबुल का प्रभाव अधिक विनाशकारी और व्यापक रहा। पश्चिम बंगाल सरकार की आंतरिक रिपोर्ट कहती है कि बुलबुल ने 35.6 लाख लोगों को प्रभावित किया और 5 लाख घरों को नुकसान हुआ। इसके अलावा पंद्रह लाख हेक्टेयर ज़मीन में फसल नष्ट होने, 10 करोड़ अमेरिकी डॉलर के बराबर मछली उद्योग का नुकसान होने और 13,286 पशुओं की मौत से जीविका को भारी नुकसान हुआ।[8]

2.2 सुंदरवन का पलायन परिदृश्य

भारत में 2011 की जनगणना के मुताबिक उत्तर और दक्षिण 24 परगना दोनों ही ज़िलों में रहने वाली आधी आबादी गरीबी रेखा के नीचे है[9] और इनमें से 10% अति गरीब हैं। साल 2011 में हाउसहोल्ड सर्वे में पाया गया कि ज़्यादातर खराब आवासीय स्थिति में हैं। आबादी मूल रूप से ग्रामीण है जो कच्चे (छप्पर वाले) (76.8 प्रतिशत) घरों में रह रहे हैं जिनमें एक कमरा (72 प्रतिशत) और गोबर से लीपा फर्श (86 प्रतिशत) है।

विश्व बैंक द्वारा किये गये एक ग्रामीण हाउसहोल्ड सर्वे (2005-09) में पाया गया कि 1000 सुंदरवन वासियों के समूह में 190 को दिन में सिर्फ एक दफे भोजन मिलता है। इसके अतिरिक्त हर एक हज़ार में से 510 (ज़्यादातर बच्चे) किसी न किसी तरह के कुपोषण का शिकार हैं।[10] यह रिपोर्ट बताती है कि सुंदरवन क्षेत्र के सबसे समृद्ध ब्लॉक के एक हज़ार लोगों में से भी 310 गरीबी रेखा के नीचे होते हैं जबकि सबसे विपन्न ब्लॉक में यह आंकड़ा एक हज़ार में 650 है।

जलवायु परिवर्तन और उन्नीसवीं सदी के 3,500 किलोमीटर लम्बी तटबन्धीय व्यवस्था के क्षरण से डेल्टा विलुप्त हो रहा है, खारा पानी भीतर घुस रहा है और समुद्र जल स्तर उठ रहा है जिससे यहां रह रहे लोगों और उनके ज़मीन की उत्पादकता पर चौतरफा संकट है।"[11]

जाधवपुर विश्वविद्यालय के समुद्र विज्ञान विभाग के हज़रा और घोष सुंदरवन के पश्चिमी हिस्से पर एक रिसर्च की जो बताती है कि 1991 से 2011 के बीच यहां कृषि उत्पादकता 32 प्रतिशत घटी है।[12]

प्रति व्यक्ति भू-स्वामित्व (लैंड होल्डिंग) में कमी (पीढ़ी दर पीढ़ी परिवार जनों में बढ़ोतरी के कारण) कृषि सेक्टर में स्थायित्व की

कमी कारण है। कृषि विभाग के मुताबिक इस ट्रेंड के लिये दो पहलू ज़िम्मेदार हैं। एक ओर पर्याप्त सिंचाई सुविधाओं की कमी जैसी परम्परागत अड़चनें हैं और दूसरी ओर जलवायु परिवर्तन के कारण नदियों में उफान की नई समस्या जिससे ज़मीन में खारापन बढ़ रहा है।

जाधवपुर विश्वविद्यालय में के समुद्र विज्ञान विभाग के प्रोफेसर तुहिन घोष जो DECCMA (डेल्टा, वल्नेरिबिलिटी एंड क्लाइमेट चेंज: मिटिगेशन एंड एडाप्टेशन) प्रोजेक्ट के नेशनल लीड हैं, कहते हैं कि पूरे सुंदरवन के 70% से अधिक परिवार बेहतर जीविका की तलाश में बाहर चले गये हैं। इनमें से 25 से 30% पश्चिम बंगाल के बाहर गये हैं।[13]

जलवायु परिवर्तन प्रभावों के कारण सुंदरवन क्षेत्र में पहले से चले आ रहे पिछड़ेपन की समस्या और विकराल हुई है जिससे पलायन की रफ्तार बढ़ी है। इस बात की पुष्टि इस रिपोर्ट के दौरान लोगों से बातचीत में हुई। कृषि उत्पादन में कमी और पलायन में महत्वपूर्ण संबंध स्थापित करता हज़रा और घोष का अध्ययन भी इस तथ्य को प्रमाणित करता है।[14]

ग्रामीण घरेलू सर्वे (RHS) में भी सुंदरवन से पर्याप्त स्थायी, मौसमी और अस्थायी पलायन पाया गया है। परिवार के प्रमुख कमाऊ लोगों में 25% काम की तलाश में अस्थायी रूप से पलायन कर गये हैं और 24% से अधिक काम की तलाश में मौसमी तौर पर बाहर जाते हैं। जब किसी परिवार का एक पुरुष (या कभी-कभी महिला) सदस्य कुछ दिनों (या एक साल तक की अवधि) के लिये काम करने किसी विशेष जगह जाता है और पैसा बचाकर तब तक के लिये घर लौट आता है जब तक कि वह राशि समाप्त न हो जाये तो उसे अस्थायी पलायन कहते हैं।

कई जानकार माइग्रेशन को एडाप्टेशन का ही एक रूप मानते हैं और सुंदरवन के स्थानीय अर्थव्यवस्था पर इसके प्रभाव को रेखांकित करते हैं।[15] हालांकि प्रवासियों की वजह से इन इलाकों में पैसा आने से उसका सकारात्मक असर भी है। इसे स्वीकार करते हुये कुछ एक्सपर्ट इसके मौजूदा स्वरूप से जुड़ी अन्तर्निहित असुरक्षा और अस्थायीपन की ओर इशारा करते हैं। केरल में 2018 में आई बाढ़[16] और हाल ही में कोविड महामारी के दौरान प्रवासियों के घर लौटने की शक्ल में हम इसकी झलक देख चुके हैं।[17]

जब यह पूछा गया कि किस परिवार के कम से कम एक सदस्य को द्वीप से बाहर जाना पड़ा है तो सागर आइलैंड के जिबोन्ताला गांव में मोमेना बीबी के घर इकट्ठा हुये सभी 15 लोगों ने हाथ खड़े कर दिये। विडम्बना यह है कि मोमेना के बरामदे इकट्ठा हुये ये सभी लोग खुद पहले से विस्थापित हैं। मूल रूप से इनमें से ज्यादातर लोहाचारा और घोड़ामारा द्वीप के हैं लेकिन समुद्र जल स्तर में वृद्धि और उससे उत्पन्न इरोज़न होने से उनकी ज़मीन 1970 के दशक में ही डूबने लगी। राज्य सरकार की मदद से चले कार्यक्रम के तहत तब ये लोग सागर द्वीप में लाये गये।

मूल रूप से इनमें से अधिकतर लोहाछारा और घोड़ामारा द्वीप के रहने वाले हैं लेकिन जब समुद्र सतह बढ़ने और ज़मीन कटाव के कारण 1970 में इनकी ज़मीन डूबने लगी तो बहुत से परिवार सागर द्वीप में आ गये। यह विस्थापन सरकार की मदद से चलायी गई योजना के तहत हुआ जिसमें इन लोगों को ज़मीन दी गई।

हालांकि 1990 का दशक आते आते सागर द्वीप भी जलवायु परिवर्तन, चक्रवाती तूफान और ज़मीन धंसने से उनके मूल निवास (लोहाचार और घोड़ामारा) की तरह ही तबाह होने लगा और यहां के निवासियों के सामने फिर वही संकट खड़े हो गये। सुंदरवन के अलग अलग हिस्सों में (देखें अनुलग्नक-1) समुदायों ने जो कुछ देखा या विशेषज्ञों से मिलकर या फोनपर हमने जो बात की वह व्यापक और आंखें खोलने वाली थी।

सुंदरवन में रहने वाले लोगों और वहां काम कर चुके विशेषज्ञों से मिलकर या फोन पर बात की गई (लोकेशन के लिये देखें अनुलग्नक -1) और उनके व्यापक अनुभव कई बातें सामने लाते हैं।

कई लोगों को बार-बार घर छोड़ना पड़ा

स्थानीय लोगों से बात करने परएकमत से यह बात सिद्ध होती है कि जलवायु परिवर्तन बड़ी तीव्रता की अति मौसमी घटनाओं (एक्सट्रीम वेदर ईवेंट) और भू-क्षरण जैसे धीमी गति के बदलावों (स्लो ऑनसैट इवेंट) में बढ़ोतरी का कारण बन रहा है और यह

सागर द्वीप के जिबोन्ताला गांव में हुई एक बैठक में सभी प्रवासी इस बात की तसदीक कर रहे हैं कि उनके परिवार के कम से कम एक सदस्य ने पलायन किया है। (फोटो – जयन्त दास)

बात सामान्य होती जा रही है जिससे बार-बार विस्थापन होता है।

"समुद्र के बढ़ते जल स्तर के कारण हमने चार बार अपना घर और सम्पत्ति खोयी है और अब जितना संभव है हमने नदी के तट से दूर घर बनाया है लेकिन हम नहीं जानते कि यह कितने दिन तक रह पायेगा," सागर द्वीप के तपन जाना का कहना है।

कविता मैती, जिसका घर गंगा सागर तट के पूर्वी छोर पर निर्दयी समुद्र के आगे खड़ा अकेला बसेरा है, कभी अधिक समय तक एक घर में नहीं रह पाई। वर्तमान घर में वह अपने पति, बेटे, बहू और नातिन के साथ रहती है।

सुंदरवन में आपको ऐसे किस्से जगह जगह मिलेंगे लेकिन पश्चिमी हिस्से में बसे मौसुनी और सागर द्वीप को उफनते समुद्र के करीब होने के कारण अधिक खतरा है।

विस्थापन अब हर रोज़ की बात

आश्चर्य नहीं कि सुंदरवन में रहने वाले 60-70% परिवारों का कम से कम एक सदस्य बाहर है। इस तथ्य को उन सदस्यों ने प्रमाणित किया जिनसे इस शोध के दौरान बात की गई। लोगों का कहना है कि खेती और मछली पालन जैसे जीविका के परम्परागत साधनों पर जलवायु परिवर्तन के कारण हुई चोट की वजह से लोगों को जाना पड़ा।

पलायन का पैटर्न बताता है कि ज़्यादातर लोग घर के पास, कोलकाता या अंदरूनी इलाकों में, मूल रूप से ट्रेन लाइन के साथ-साथ, जाते हैं।

फिर भी 30% पश्चिम बंगाल के बाहर पलायित होते हैं। राज्य से बाहर जाने वाले प्रवासी तमिलनाडु और केरल जैसे राज्यों में निर्माण क्षेत्र में 'अर्ध-कुशल' या 'अकुशल' मज़दूरों की तरह काम करते हैं जहां उन्हें अपने घर से अधिक पारिश्रमिक मिलता है।

"शादी के पहले और बाद के समय को जोड़ दें तो यह मेरा पांचवां घर। इससे पहले के सारे समुद्र निगल गया... यहां भी, समुद्र धीरे धीरे पास आ रहा है। जब ज्वार आता है तो मेरा घर पानी में डूब जाता है। जब तक समुद्र हमें जाने के लिये मजबूर नहीं कर देता तब तक हम यहां रहेंगे क्योंकि हमारे पास सुरक्षित जगह में ज़मीन खरीदने और घर बनाने के लिये धन और संसाधन नहीं हैं" - कविता मैती, धब्लातोन, सागर द्वीप (फोटो: जयंत दास)

प्रवासी महाराष्ट्र और दिल्ली जैसे राज्यों में भी जाते हैं और वहां कन्स्ट्रक्शन या दूसरे सेक्टर में काम करते हैं। इसका एक छोटा हिस्सा, करीब 4 प्रतिशत, मध्य-पूर्व जैसे अंतर्राष्ट्रीय गंतव्य में जाता है।

कोलकाता और इसके अंदरूनी इलाकों में कई प्रवासी स्थायी रूप से बस गये हैं। इन जगहों में बसन्ती और मोल्लाखली नाम की बसावटें देखी जा सकती हैं जिनके नाम सुंदरवन के द्वीपों पर रखे गये हैं। इससे पता चलता है कि इन जगहों से कितनी बड़ी संख्या में लोग हटकर यहां आ गये हैं।

पुरुष: अधिक पलायन, अधिक दूर; महिलाओं का मामला विपरीत

पुरुष महिलाओं से अधिक पलायन करते हैं। DECCMA (जाधवपुर विश्वविद्यालय) के मुताबिक महिलाओं में यह आंकड़ा 17 प्रतिशत है तो पुरुषों में 83 प्रतिशत। महिलायें आस-पास (कोलकाता के भीतर या उसके दूरदराज़ के इलाकों में) जाती हैं। पुरुष पश्चिम बंगाल के बाहर जाते हैं। महिलायें दिन में बाहर काम कर रात को घर आ जाती हैं। प्रवासियों में अधिकतर युवा हैं; करीब 21 से 30 साल के। पुरुषों को कृषि में निष्फलता और रोज़गार के अवसरों की कमी के कारण जाना पड़ता है तो महिलायें अक्सर शादी के बाद, अपने पति या पूरे परिवार के साथ सुंदरवन से बाहर जाती हैं।

पलायन से आर्थिक स्तर में गिरावट और फिर पलायन

DECCMA द्वारा किये गये अध्ययन से पता चलता है कि चक्रवात और बाढ़ 7% पलायन के लिये ज़िम्मेदार हैं जबकि ज़िन्दगी को बेहतर बनाने के लिये 28% लोग अपनी इच्छा से पलायन करते हैं। यद्यपि, कई बार सभी कारक मिलकर विस्थापन की वजह बनते हैं।

समुदाय के लोगों से बात करने पर पता चलता है कि पलायन के पीछे सबसे बड़ा कारण आर्थिक मजबूरी है, जो कृषि की निष्फलता की वजह से लगातार बढ़ रही है। यह गांव-गांव की कहानी है कि खेती की नाकामी और बर्बादी के पीछे जलवायु के बदलते ग्राफ और अति तीव्र मौसमी घटनाओं का प्रभाव है।

यह दिलचस्प है कि खेती से होने वाली कमाई में अनिश्चितता के बावजूद 57% लोग धान की बुआई के वक्त घर लौटते हैं। यानी वह साल में दो बार (प्रति पारी 3-4 महीनों के लिये) घर आते हैं और खेतों में काम करते हैं। हालांकि 24% लोग इस मॉडल पर नहीं चलते और एक बार घर छोड़ने पर अमूमन 6 महीने या उससे अधिक वक़्त बाहर गुजारते हैं। करीब 19% ऐसे हैं जो घर और गंतव्य के बीच कई बार आते-जाते रहते हैं।

गंतव्य स्थल पर प्रवासियों की हालत

गंतव्य स्थल दो तरह के होते हैं:

1) स्थायी गंतव्य जहां प्रवासियों के लिये कुछ क़ानूनी संरक्षण हो, खासतौर से नई बसावट पर भू-अधिकार; और
2) अस्थायी गंतव्य जहां अमूमन कोई क़ानूनी संरक्षण नहीं होता।

वो लोग जो लोहाचारा से और घोड़ामारा जैसे द्वीपों से अपनी ज़मीन डूबने के कारण विस्थापित हुये और राज्य सरकार ने उन्हें घर बनाने और खेती करने के लिये ज़मीन दी, वह पहली श्रेणी में आते हैं। इनमें से अधिकतर को अपनी ज़मीन के लिये क़ानूनी पट्टा भी मिल चुका है।

लेकिन वक्त बीतने के साथ परिवार का आकार बढ़ता गया और प्रति व्यक्ति ज़मीन कम होती गई जिससे फिर विस्थापन करना पड़ा। मौजूदा विस्थापन पीछे वजह है रोज़गार की तलाश और कमाई और इस कोशिश में ज़्यादातर विस्थापितों के रहन-सहन का स्तर गिरा है।

विस्थापितों की दूसरी श्रेणी झुग्गियों में अधिक दोयम दर्जे की ज़िन्दगी जीने पर मजबूर है।

जिन लोगों से इस रिसर्च के लिये बात की गई उनका कहना है घर से दूर, विशेषकर दूसरे राज्यों में, रहना आसान नहीं है जहां 70-80 लोग एक बड़े कमरे में रहते हैं जिसका किराया करीब 1,500 रुपये होता है। स्थानीय दलाल हर रोज़ उनकी कमाई से 50 रुपये ले जाता है। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य और सुरक्षा मानकों के लागू न होने से कार्यस्थल में मौजूद ख़तरों से बचाव के कोई प्रावधान नहीं होते जिससे संकट बढ़ जाता है।

इसका असर यह होता है कि गंतव्य पर प्रवासियों की सामाजिक-आर्थिक सुरक्षा बहुत कम हो जाती है और अक्सर उनका शोषण होता है। फिर भी उनके पास शिकायत निवारण के लिये कोई संसाधन या फोरम नहीं होता। एक व्यक्ति ने इसे नये कार्यक्षेत्रों में उत्पन्न "नव दास-प्रथा" की संज्ञा दी।

अगर 2009 में आये आइला चक्रवात की मिसाल लें तो सुंदरवन के मीनाख़ान क्षेत्र से 200 पुरुष आसनसोल के दुर्गापुर इलाके में स्टोन क्रशर्स में काम करने गये। इनमें से अधिकतर को जानलेवा सिलिकोसिस हो गया और पिछले कुछ सालों में 18 से 30 आयुवर्ग के 25 से अधिक लोगों की मौत हो चुकी है।

विस्थापन का दूसरा पहलू

प्रवासियों द्वारा घरों को भेजे जाने वाले पैसे ने स्थानीय अर्थव्यवस्था को ताकत दी है। करीब 6 से 18 महीने लगातार बाहर काम करने वाले ये लोग हर महीने 8 से 10 हज़ार रुपये घर भेजते हैं। इससे घर की मरम्मत होती है, नया घर बनता है, स्कूल-कॉलेज की फीस भरी जाती है, शादी-ब्याह का खर्च पूरा होता है या सुरक्षित या मुफीद (अमूमन कस्बाई इलाके में या उसके पास) जगह ज़मीन खरीदी जाती है। विस्थापन से आने वाला पैसा कई बार और अधिक विस्थापन को प्रेरित करता है।

कोविड-19: लॉकडाउन से ज़ाहिर हुआ लोगों पर ख़तरा

सामाजिक दबाव व तनाव के बावजूद कुछ आर्थिक फायदे दे रहे विस्थापन को सुंदरवन में अनुकूलन (एडाप्टेशन) का नाम दिया गया है। हालांकि इसके आर्थिक लाभ के पहलू को अनदेखा नहीं किया जा सकता पर ये भी सच है कि इस माइग्रेशन के पीछे स्थानीय रोज़गार की संभावनाओं की कमी है और लम्बे दौर में इसके परिणाम क्या होंगे इसका मूल्यांकन किया जाना चाहिये। कम से कम दो ऐसी ताज़ा घटनायें हैं जो इस विस्थापन के पीछे का

भयावह सच दिखाती हैं।

जब कोरोना महामारी ने अभूतपूर्व राष्ट्रीय और वैश्विक संकट खड़ा किया तो भारत में बिना किसी पूर्व चेतावनी के पूरे देश में तालाबन्दी कर दी गई। कुछ ही घंटों के नोटिस पर लाखों मज़दूर सड़क पर आ गये। बिना किसी काम और भोजन-पानी के और रहने की सुविधा के बिना कम से कम 1.5 लाख मज़दूर बेहद कठिन परिस्थितियों में घर लौटने पर मजबूर हुये। केरल से लौटे एक मज़दूर को उसके बिचौलिये – जो इन मज़दूरों को काम दिलाते हैं – ने बताया कि भले ही लॉक़डाउन पूरा हो गया हो और दुनिया वापस सामान्य स्थिति में लौट रही हो लेकिन उसे ये पता नहीं कि कब वह दोबारा मज़दूरों को वापस केरल भेज पायेगा।

"हम वापस जाना चाहते हैं लेकिन क्या हमें वहां काम मिलेगा और अगर काम मिल भी गया; तो क्या उतना अच्छा पैसा मिल पायेगा जो कोरोना फैसले से पहले मिल रहा था," एक मज़दूर ने कहा। जानकार बताते हैं कि ऐसे हालात में भले ही मज़दूर शुरुआत में बचत के पैसे या आपस में सहयोग से अपनी गाड़ी खींच लेते हैं लेकिन बाद में उनके बीच स्थानीय रोज़गार के लिये स्पर्धा होने लगती है और वह अपना पारिश्रमिक घटा देते हैं और अंतत: लोकल इकॉनोमी अस्त-व्यस्त हो जाती है।

विशेषज्ञों ने 2018 में केरल की बाढ़ से भी इसकी तुलना की है चाहे छोटे स्तर पर ही सही। तब भी बाढ़ के कारण सुंदरवन के बहुत सारे घर बाशिंदे वापस आये और इसी तरह अपना जीवन-यापन किया। लेकिन कोरोना का अभिशाप कहीं अधिक बड़ा और गहरा है और यह विस्थापन के मौजूदा स्वरूप पर सवाल खड़े करता है।

यहां पर स्वयं सहायता समूह ठीक से काम नहीं कर रहे हैं। बाज़ार और व्यापार के अवसरों का अभाव समेत कई पहलू हैं जिनके वजह इन योजनाओं को यहां क्रियान्वित करने में दिलचस्पी नहीं होती।

2.4 जन-समाधान (लोगों के सुझाव)

"सुंदरवनका शैक्षिक स्तर अपेक्षाकृत बेहतर है, लेकिन जीवनयापन के अवसरों का अभाव लोगों को घरों से दूर धकेल रहा है। हालांकि जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि और मछलीपालन जैसे हमारे परम्परागत रोज़गार बुरी तरह प्रभावित हुये हैं, हम अब तक रोज़गार के विकल्प तलाशने में नाकाम रहे हैं," पूर्वी सुंदरवन के बाली द्वीप में रहने वाले अनिल मिस्त्री कहते हैं जो यहां पर गैर लाभकारी इकोटूरिज्म केंद्र चलाते हैं।

प्रशासन के पास क्लाइमेट चेंज के बढ़ते प्रभावों के मद्देनज़र लोगों को विस्थापन संबंधी दिक्कतों से बचाने के लिये सामाजिक सुरक्षा की न तो कोई ढांचागत नीति है और न ही कोई एक्शन प्लान। पंचायतों को पास छोटे स्तर पर हो रहे क्लाइमेट प्रभाव से निपटने के लिये भी कोई क्षमता नहीं दिखती।

केंद्रीय आवास योजना, गीतांजलि प्रोजेक्ट (हाउसिंग), कन्याश्री या रूपाश्री (बालिकाओं के लिये) योजना और मनरेगा (ग्रामीण क्षेत्र में 100 दिन रोज़गार योजना) जैसी बहुत सी सोशल स्कीम आम जन के लिये उपलब्ध हैं। दुर्भाग्य से, लोगों के बयानों से स्पष्ट है कि बड़े स्तर पर होने वाला भ्रष्टाचार, राजनीतिक तानाशाही, प्रशासकीय उदासीनता और लाभार्थियों को भुगतान में देरी जैसी वजहों से ज़रूरतमन्द जनता तक फायदे नहीं पहुंच पाते।

आइला चक्रवात (2009) के बाद शुरू की गई योजना के तहत ज़्यादातर जनता को सुंदरवन में "आइला राइस" मिल रहा है। आपदा के बाद कुछ घरों की मरम्मत के लिये धन आबंटित किया गया और कुछ निर्माण सामग्री दी गई। लेकिन जिन लोगों को आपदाओं का सबसे अधिक ख़तरा है उनमें जलवायु संकट से लड़ने की क्षमता (रेजिलिएन्स) विकसित करने के लिये यह नहीं कहा जा सकता।

बेरोज़गारी सबसे बड़ी समस्या है। अगर इन इलाकों में क्षेत्रीय इकोलॉजी और उत्पादन क्षमता से मेल खाते छोटे-बड़े उद्योग धन्धे खुल सकें तो शायद लोगों का विस्थापन रुक सके।

"साल 2019 में, मॉनसून आने में 40 दिन की देरी हुई और इससे धान की बुआई बुरी तरह प्रभावित हो गयी; और तभी बुलबुल तूफान आ गया। सुंदरवन में अधिकांश कृषि मॉन-

सून पर ही टिकी है क्योंकि हमारे पास सिंचाई के साधन सीमित हैं। हम जीवन-यापन के लिये खेती पर कैसे निर्भर रह सकते हैं। वर्तमान स्थिति को तब तक नहीं बदला जा सकता जब तक कि अधिक पैदावार देने वाली प्रजाति की जगह परम्परागत और नमक प्रतिरोधी धान की प्रजातियां इस्तेमाल हों क्योंकि ये चुनौतीपूर्ण हालात में अधिक सुगमता से उग सकती है," **कृषि विज्ञानी अमलेश मिश्रा कहते हैं।**

सागर द्वीप या दूसरी जगहों पर लोगों को ऐसा लगता है कि फसल बीमा काफी उपयोगी हो सकता है क्योंकि कृषि पर अक्सर मनमौजी और बदलते मौसम की मार तो पड़ती ही है वह अब एक्सट्रीम वेदर का शिकार भी होने लगा है। बड़े भू-स्वामियों के लिये फसल बीमा कारगर लगता है; छोटे किसानों के लिये कृषक सहकारी समितियां बनाना कहीं अधिक मुफीद है। इससे लैंड शेयरिंग के ज़रिये ज़मीन का नुकसान कम करने में मदद मिलेगी और किसानों को बाज़ार मूल्य तय करने और नये कृषि उपकरण अपनाने में भी आसानी होगी। पश्चिम बंगाल के अन्य इलाकों में ऐसी सहकारी समितियां कामयाबी से चल रही हैं लेकिन सुंदरवन में इनका पर्याप्त प्रभावी विस्तार किया जाना ज़रूरी है। बहुत कम लोगों को यह पता है कि बीसवीं सदी की शुरुआत में भारत का कॉपरेटिव मूवमेंट सर डेनियल हेमिल्टन के नेतृत्व में सुंदरवन में ही शुरू हुआ।

भले ही सुंदरवन में रहने वाले आदिवासी समुदाय के कारण और दूसरी वजहों से मछलीपालन यहां के बाशिदों के जीवन-यापन का मूल ज़रिया है फिर भी किसी सरकारी योजना और मछलीपालन में कोई तालमेल नहीं दिखता। मछुआरे अक्सर यह शिकायत करते हैं कि वन-विभाग उन्हें परेशान करता है और आरोप लगाते हं कि नावों के लाइसेंस देने में बड़ी रिश्वतखोरी होती है।

स्थानीय लोग मांग करते हैं कि सरकार उनके घरों को सुरक्षित करे और चक्रवाती से बचाव लायक बनाये और धान की नमक प्रतिरोधी और परम्परागत प्रजातियों को बढ़ावा दे। बहुत सारे अन्य लोग कहते हैं कि मनरेगा जैसी योजनाओं में भुगतान नियमित और समय पर हो। लोग वर्षा जलसंचय जैसे तरीकों से साफ पीने के पानी की मांग भी कर रहे हैं।

दूसरे लोगों ने महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोज़गार गारंटी योजना (मनरेगा) जैसी योजनाओं के तहत नियमित और समयबद्ध भुगतान की ज़रूरत पर ज़ोर दिया। लोगों ने ये भी कहा कि वर्षाजल को इकट्ठा कर और अन्य जल-संचय कार्यक्रमों से साफ पानी उपलब्ध होना चाहिये।

2.5 References

1 A district (Zilla) is an administrative division of an Indian state or territory. West Bengal now has 23 districts, out of which South 24 Parganas and North Parganas share part of the Indian Sundarbans.
2 Migration helping Sundarbans youth, women adapt to climate uncertainties, SahanaGhosh 02 January 2019 https://earthjournalism.net/stories/migration-helping-sundarbans-youth-women-adapt-to-climate-uncertainties
3 Building Resilience for Sustainable Development of the Sundarbans: Strategy Report (Report No. 88061-IN) by The World Bank, 2014
4 Indian Sundarbans Delta: A Vision by WWF India, published in 20115
5 Building Resilience for Sustainable Development of the Sundarbans: Strategy Report (Report No. 88061-IN) by The World Bank, 2014
6 Building Resilience for Sustainable Development of the Sundarbans: Strategy Report (Report No. 88061-IN) by The World Bank, 2014
7 Building Resilience for Sustainable Development of the Sundarbans: Strategy Report (Report No. 88061-IN) by The World Bank, 2014
8 Report on cyclone "BULBUL" in November 2019, reported by Department of Disaster Management and Civil Defense, Government of West Bengal
9 Government of India. 2011. Census of India, 2011. New Delhi: Government of India, Ministry of Home Affairs, Office of the Registrar General and Census Commissioner. https:/ /www.censusindia.gov.in/2011-prov-results/paper2/ prov_results_paper2_wb.html.
10 Building Resilience for Sustainable Development of the Sundarbans: Strategy Report (Report No. 88061-IN) by The World Bank, 2014
11 Building Resilience for Sustainable Development of the Sundarbans: Strategy Report (Report No. 88061-IN) by The World Bank, 2014
12 Hajra, Rituparna and Ghosh, Tuhin. 2017 Agricultural productivity, household poverty, and migration in the Indian Sundarban Delta. Elem SciAnth, X(X): XX. DOI: https://doi.org/10.1525/elementa.196
13 www.deccma.com
14 Hajra, Rituparna and Ghosh, Tuhin. 2017 Agricultural productivity, household poverty, and migration in the Indian Sundarban Delta. Elem SciAnth, X(X): XX. DOI: https://doi.org/10.1525/elementa.196
15 Danda, Anurag, Ghosh, Nilanjan et al.; Managed retreat: adaptation to climate change in the Sundarbans ecoregion in the Bengal Delta; Journal of the Indian Ocean Region https://www.tandfonline.com/doi/abs/10.1080/19480881.2019.1652974, published on August 12, 2019
16 Basu, Jayanta;People rush back to the Sundarbans, untested, https://www.thethirdpole.net/2020/03/31/people-rush-back-to-the-sundarbans-untested/, published on March 31, 2020
17 Basu, Jayanta; Migrant workers turn climate refugees twice over, https://indiaclimatedialogue.net/2018/11/05/migrant-workers-turn-climate-refugees-twice-over/, published on Nov 05, 2018

3 बीड, महाराष्ट्र - सूखे की मार से पस्त

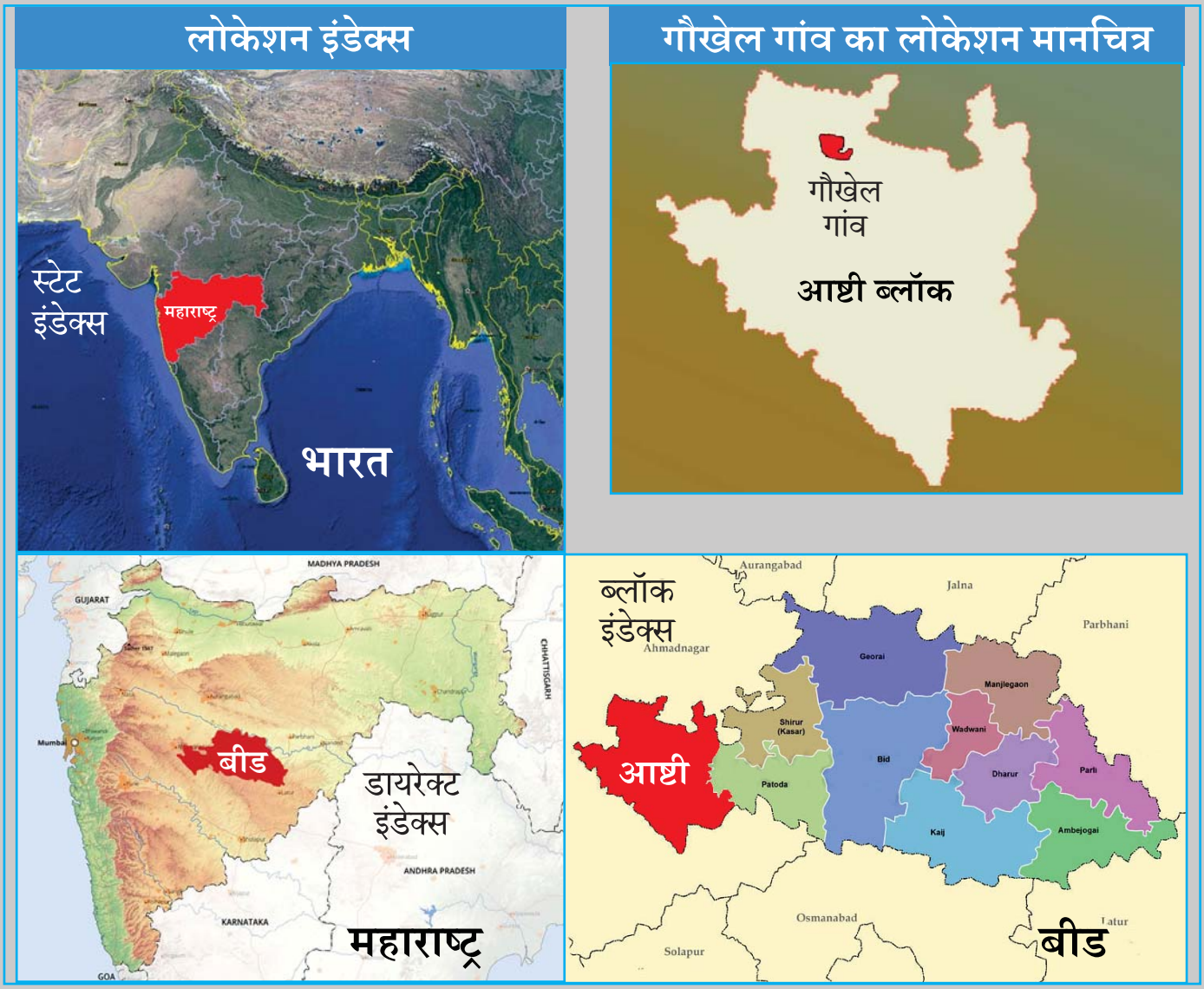

चित्र 3: रिसर्च लोकेशन के साथ महाराष्ट्र का मानचित्र

बीड जिला महाराष्ट्र के मराठवाड़ा क्षेत्र के आठ जिलों में से एक है। मराठवाड़ा में सालाना औसतन 600 मिलीमीटर वर्षा होती है, जो राष्ट्रीय औसत से 30 प्रतिशत कम है। नतीजा, यह क्षेत्र प्रायः सूखाग्रस्त रहता है और अत्यधिक शुष्कता, गर्म मौसम और पानी की कमी के कारण जाना जाता है।[1] बार-बार सूखा पड़ने के कारण यहां से लोगों का पलायन आम बात है।

भारतीय उष्णदेशीय मौसम विज्ञान संस्थान और भारतीय विज्ञान संस्थान के एक अध्ययन के अनुसार, 1870 से 2015 के बीच मराठवाड़ा में 22 बार सूखा पड़ा इनमें से पांच बार दो साल लगातार सूखा पड़ा जिनमे साल 2014-15 और 2015-16 का सूखा भी सम्मिलित है। साल 2014 और 2015 में दोनों बार मराठवाड़ा में 40 प्रतिशत कम वर्षा हुई।[2]

3.1 बीड जिले का जलवायु परिवर्तन परिदृश्य

बीड जिले ने 1871 से 2015 के बीच 22 बार सूखा झेला है। जिसमें पांच बार, 1876-77, 1920-21, 1971-72, 1984-85 और 2014-15 में, यहां दो वर्ष लगातार सूखे की मार पड़ी है। गौरतलब है कि जिले में 1940 से 1970 के बीच एक बार भी सूखा नहीं पड़ा। साल 1999 से 2011 के बीच सामान्य से कम वर्षा होने पर भी सूखे की समस्या नहीं रही।[3]

यह अध्ययन बीड जिले के आष्टी खंड पर केंद्रित है। इस खंड में सालाना औसतन 800 मिमी वर्षा होती है और यह सबसे कम पानी वाले खंडो में एक है। यहां की कुल खेती योग्य भूमि का मात्र 20 प्रतिशत ही सिंचित है।[4]

वॉटरशेड ऑर्गनिज़शन ट्रस्ट (WOTR) ने वर्षा और तापमान इन दो मापदंडो पर आष्टी खंड के पिछले वर्षों (1989 से 2018) के जलवायु संबंधी आंकड़ों और भविष्य (सदी के शुरुआत, मध्य और अंत) के मौसम के अनुमान सम्बन्धी एक आतंरिक विश्लेषण किया, ताकि ऐतिहासिक प्रवृत्तियों और भविष्य के अनुमानों को समझा जा सके। पलायन की प्रवृत्ति की व्याख्या भी जलवायु परिवर्तन के सन्दर्भ में की जा सकती है।[5]

इस विश्लेषण से यह पता चलता है कि 1989-2018 के दौरान जहां खरीफ सीज़न में सालाना औसतन वर्षा में कमी आई वहीं रबी सीज़न के दौरान इसमें इज़ाफ़ा हुआ। हाल के वर्षों में 2004-2018 के दौरान अक्टूबर और नवम्बर के महीनों में बारिश के दिनों की संख्या पहले के वर्षों (1989-2003) के मुकाबले कम थी। उत्तरपूर्वी मानसून के दौरान बारिश के दिनों की संख्या में हाल के वर्षों में कमी आई है। पिछले 30 में से 17 साल ऐसे रहे जब सालाना औसतन वर्षा की मात्रा उस अवधि के लिए नामित स्तर से कम रही, जैसा कि चित्र संख्या 4 में दिखाया गया है। वहीं न्यूनतम और उच्चतम तापमान में भी ऊर्ध्वगामी प्रवृत्तियाँ देखी गई हैं।

आगामी जलवायु के अनुमान:

भविष्य के जलवायु सम्बन्धी पूर्वानुमानों की गणना के लिए WOTR ने CnESM मॉडल आउटपुट का उपयोग किया, जो CMIP5 (कपल्ड मॉडल इंटर-कंपैरिसन प्रोजेक्ट) का भाग है। सदी के पूर्व (2015-2040), मध्य (2041-2070) और उत्तर (2071-2099) भागों के लिए वर्षा के अनुमान, जून, सितम्बर और अक्टूबर के महीनों में निम्नगामी प्रवृत्तियां दर्शा रहे हैं। आगामी वर्षों में पिछले सालों (1989-2018) की तुलना में मानसून के महीनो - जुलाई और अगस्त - में वर्षा में कमी आएगी।

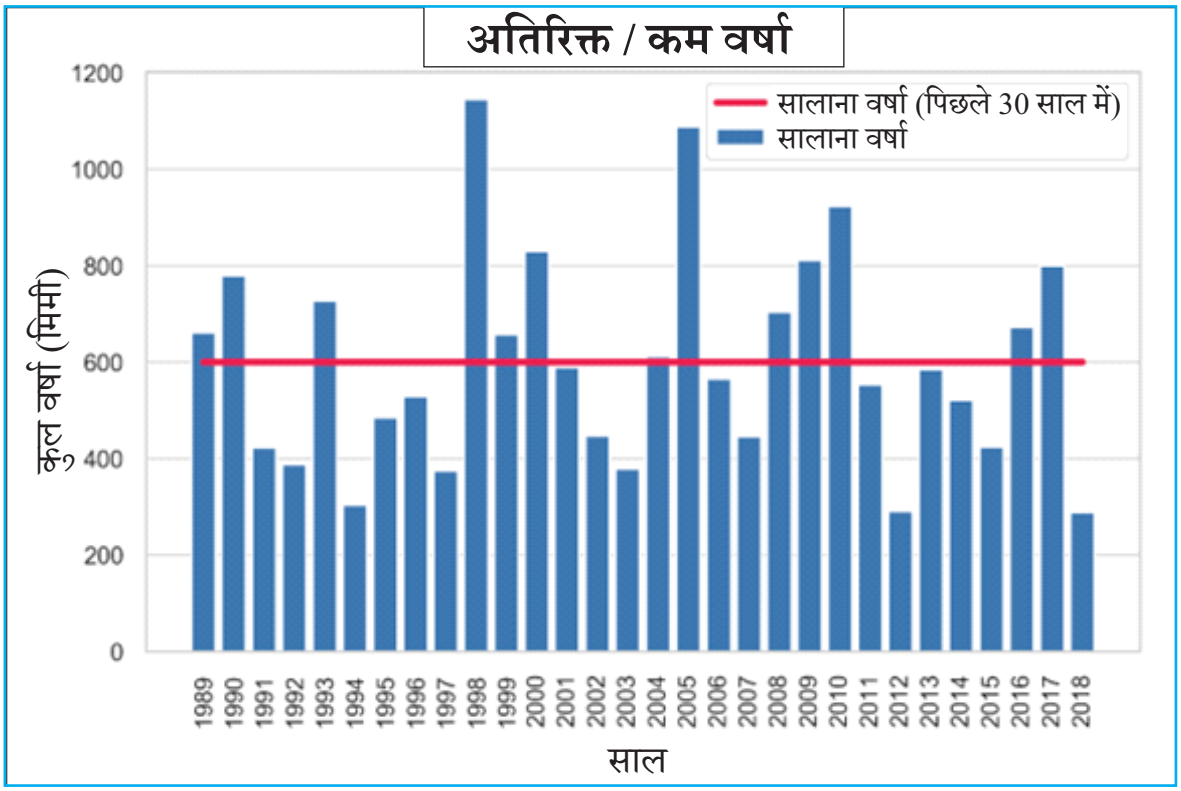

चित्र 4 – आष्टी ब्लॉक में पिछले 30 साल वर्षा में बदलाव

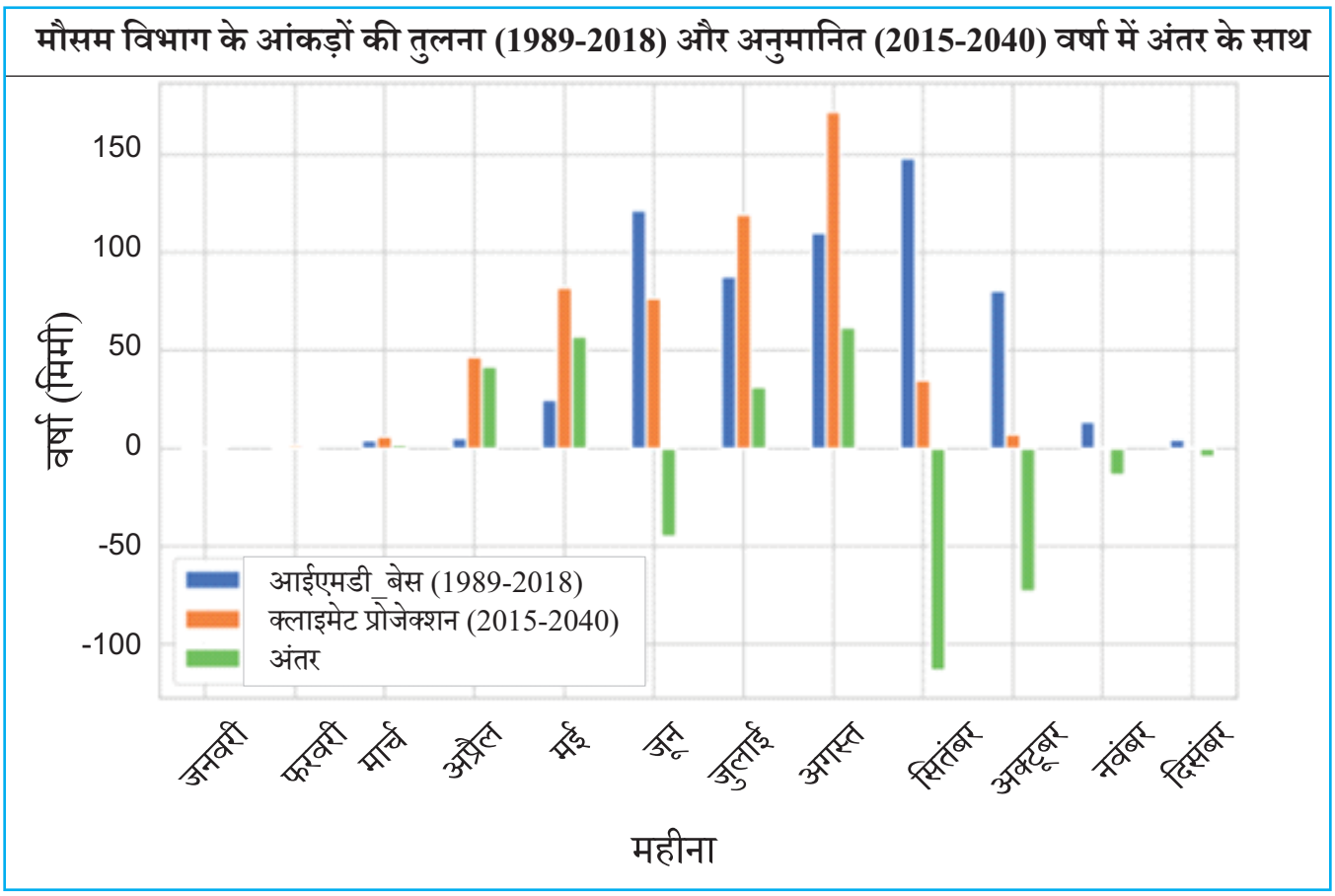

चित्र 5 – मौसम विभाग के (1989-2018) आंकड़ों की तुलना और सदी का वर्षा पूर्वानुमान

चित्र 5 दर्शाता है कि निकट वर्षों (2015 - 2040) में मानसून के जून और सितम्बर और मानसून के बाद अक्टूबर और नवम्बर के महीनों में बारिश पिछले वर्षों (1989 - 2018) की तुलना में कम होगी। शताब्दी बाद के वर्षों में न्यूनतम तापमान असाधारण रूप से बढ़ेगा। सर्वाधिक अनुमानित वृद्धि सर्दी के महीनों में होती दिख रही है। गर्मी के महीनों (अप्रैल और मई) में सभी अवधियों में अधिकतम तापमान घटने का अनुमान है। सर्दी में महीनों में पिछले वर्षों की तुलना में यही बदलाव न्यूनतम तापमान के लिए अपेक्षित है।

रबी के मौसम में तापमान बढ़ने और बारिश कम होने से फसल की पैदावार प्रभावित होगी। जिसके कारण जलवायु परिवर्तन की वजह से होने वाले पलायन में भी वृद्धि संभावित है।

3.2 बीड जिले का पलायन परिदृश्य

शोध लोकेशन के साथ महाराष्ट्र का मानचित्र. (फोटो – *WOTR*)

महाराष्ट्र में पलायन का मुख्य कारण है वर्षा में कमी और बार-बार सूखे की मार। बीड जिला सह्याद्रि पर्वतमाला के तल पर स्थित है। यहां की ज्यादातर भूमि पथरीली है और उपजाऊ नहीं है। आष्टी खंड में वर्षा जल संचयन की सुविधाओं के अभाव में मानसून का अधिकतर पानी गाँव से बाहर बह जाता है। जिसके फलस्वरूप स्थानीय निवासियों को पानी की भारी कमी का सामना करना पड़ता है।

इस परियोजना के लिए विकसित 'पार्टिसिपेटरी रिसर्च मॉड्यूल' के अंतर्गत बातचीत के दौरान स्थानीय निवासियों ने बताया कि 2013, 2016 और 2018 भयंकर सूखे के साल थे। इन वर्षों में भारी संख्या में परिवार काम की तलाश में पलायन कर गए। बेमौसम बारिश और अनावृष्टि के कारण फसल की मात्रा और गुणवत्ता कम होती है। कीड़े लगने और मुरझाने के कारण भी फसल खराब होती है।

ऐसा भी माना जा रहा है कि गांव में घरों की संख्या बढ़ रही है, जिसका कारण संयुक्त परिवारों का टूटना है। इस वजह से भूमि का विभाजन हो रहा है और वह और छोटे टुकड़ों में बंट रही है। छोटी जोत के कारण फसल से होने वाला मुनाफा भी कम हो रहा है। जंगली पशुओं जैसे जंगली सूअर, मोर और लोमड़ियों के आक्रमण के कारण फसल बर्बाद भी बहुत होती है। कभी-कभी तो पूरी खड़ी फसल ऐसे जंगली जानवर बर्बाद कर देते हैं। और इस प्रकार का नुकसान फसल बीमा योजना के अंतर्गत भी नहीं आता।

इस तरह की समस्याओं के साथ-साथ अनियमित, बेमौसम अनावृष्टि के कारण खेती में घाटा और बढ़ जाता है जिसकी वजह से इस खंड के परिवारों के कम से कम एक-दो सदस्य हर साल पलायन कर जाते हैं। वहीं भयंकर सूखे की स्थिति में पलायन करने वाले सदस्यों की संख्या बहुत बढ़ जाती है, साथ ही उनके बाहर रहने की अवधि भी बढ़ जाती है। आम तौर पर जो लोग 6 महीने बाहर रहते हैं वह सूखे के सालों में 9 महीने तक बाहर रहते हैं।

पसंद का मापदंड / पलायन गंतव्य	पेशगी भुगतान (गन्ना कटाई के लिये)	कार्य के अवसर	गांव से दूरी	रिश्तेदार/दोस्तों की मौजूदगी	मूलभूत सुविधायें (पेयजल, आवास, स्वास्थ्य)	महिला सुरक्षा
मुंबई	-	5	2	3	3	-
पुणे	3	5	4	3	4	4
अहमदनगर, सोलापुर	4	5	4	3	1	2
कोल्हापुर, सतारा, सांगली और नंदूरबार	4	3	3	3	2	3
रायपुर और हैदराबाद	-	4	2	3	1	-
टोटल	11	22	15	15	11	9

तालिका 1 – पसंदीदा गंतव्य को तय करने वाले कारकों का वजन

टेबल 1 के अनुसार प्रवास के गंतव्यों के चयन की प्राथमिकताओं का विवरण है। यदि प्रवास गन्ना कटाई के लिए हो रहा है तो ठेकदार द्वारा परिवार को दी जाने वाली अग्रिम राशि इस निर्णय का प्रमुख कारण होती है। जिस जगह अधिक अग्रिम राशि मिलती है लोग वहां जाना पसंद करते हैं। यह अग्रिम राशि प्रवासी परिवारों की अनुमानित कुल वार्षिक आमदनी का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। यह अग्रिम भुगतान आम तौर पर बड़े खर्चों जैसे विवाह, त्यौहार या खेती में निवेश (बीज, खाद आदि) के लिए प्रयोग होता है। यह अग्रिम राशि 50,००० से एक लाख रुपए तक हो सकती है।

प्रवास के गंतव्यों के चयन में अगली निर्णायक भूमिका बेहतर काम के अवसरों की होती है। युवा वर्ग ज्यादातर मुंबई और पुणे जैसे शहरों में जाना पसंद करते हैं क्योंकि वहां सभी के लिए, निरक्षर होने पर भी, अवसर ज्यादा मिलते हैं। वह कंपनियों, फैक्ट्रियों में कई तरह के काम कर सकते हैं, जैसे ड्राइवर, वॉचमैन, ऑफिस बॉय आदि। प्रवास के गंतव्यों पर जान-पहचान या एक ही गाँव के व्यक्तियों अथवा रिश्तेदारों की उपस्थिति भी उनके चयन को प्रभावित करती है और प्रवासियों को एक सुरक्षा की भावना प्रदान करती है। ऐसी स्थिति में उन्हें सुरक्षित, किफायती निवासस्थान और बाजार आदि सबका फिर से पता नहीं लगाना पड़ता।

कुछ परिवार उन गंतव्यों को वरीयता देते हैं जो उनके गाँव से अधिक दूर न हों या जहां आने-जाने में अधिक समय न लगता हो, क्योंकि उन्हें आपात स्थिति में वापस आना पड़ सकता है।

कुछ लोगों ने बुनियादी सुविधाओं और साफ़-सफाई को भी निर्णायक वजह बताया। महिलाओं की सुरक्षा भी एक मुख्य वजह बताई गयी, हांलांकि महिला समूहों में बात करने पर उन्होंने बताया कि आज तक उनके साथ कोई अप्रिय घटना नहीं हुई क्योंकि अधिकांशतः परिवार के पुरुष उनके साथ होते हैं।

3.3 पलायन के कारक और प्रभाव: गौखेल गांव के लोगों से बातचीत

गौखेल गांव बीड जिले के आष्टी में निकटतम जिला उपमुख्यालय से 32 किलोमीटर दूर है। 2011 की जनगणना के अनुसार ग्राम में 351 परिवार रहते हैं। इस ग्राम में 6-7 छोटे गाँव हैं और जनसंख्या का फैलाव मुख्य ग्राम और इन छोटे गावों में है।

गौखेल की कुल आबादी 1,521 है जिनमें 51 प्रतिशत पुरुष और

49 प्रतिशत महिलाएं हैं। सामाजिक वर्गीकरण के अनुसार लगभग 10% आबादी अनुसूचित जातियों, और लगभग 3% अनुसूचित जनजातियों की है। शेष आबादी अगड़ी जातियों की है। बहुसंख्य आबादी मराठा और वंजारी जातियों की है।

सहभागी शोध की प्रक्रिया की दौरान परिवारों के पलायन के विभिन्न कारण सामने आए। गांव अविकसित है और कृषि संकट से जूझ रहा है, जिसकी वजह बार-बार पड़ने वाला सूखा और कृषि-सम्बन्धी सब्सिडी में कमी है। साल दर साल परिवर्तित होती जलवायु और दूसरे अनिश्चित बाहरी कारण जैसे बाज़ार में उतार-चढ़ाव की वजह से यह समस्याएं और विकट हो जाती हैं।[J1]

भूमि वर्गीकरण के अनुसार, 1023.8 हेक्टेयर भूमि में से 82% निवल बोये गए क्षेत्र की अधीन है (837.6 हेक्टेयर), 17% (177.8 हेक्टेयर) कृषि-योग्य बंजर भूमि है तथा 1% भूमि गैर-कृषि कार्यों के लिए वर्गीकृत है (8.4 हेक्टेयर)। ग्रामीण जनगणना के अनुसार गौखेल गांव में वनभूमि या खेती-अयोग्य भूमि नहीं है। लगभग 814.6 हेक्टेयर भूमि सिंचित है और 23 हेक्टेयर गैर-सिंचित है (महाराष्ट्र सरकार, 2019)।

स्थानीय निवासियों का मुख्य पेशा खेती है। लगभग 5% परिवार भूमि-विहीन हैं और गैर-कृषि कार्यों से जीवन-यापन करते हैं। करीब 50 परिवारों के पास दुधारू पशु हैं और वह घर पर खोवा बनाकर व्यापारियों को बेचते हैं। चूंकि केवल खेती से आर्थिक ज़रूरतें पूरी नहीं हो पातीं, फलस्वरूप लगभग 80% परिवार नियमित रूप से काम के लिए गांव से बाहर जाते हैं।

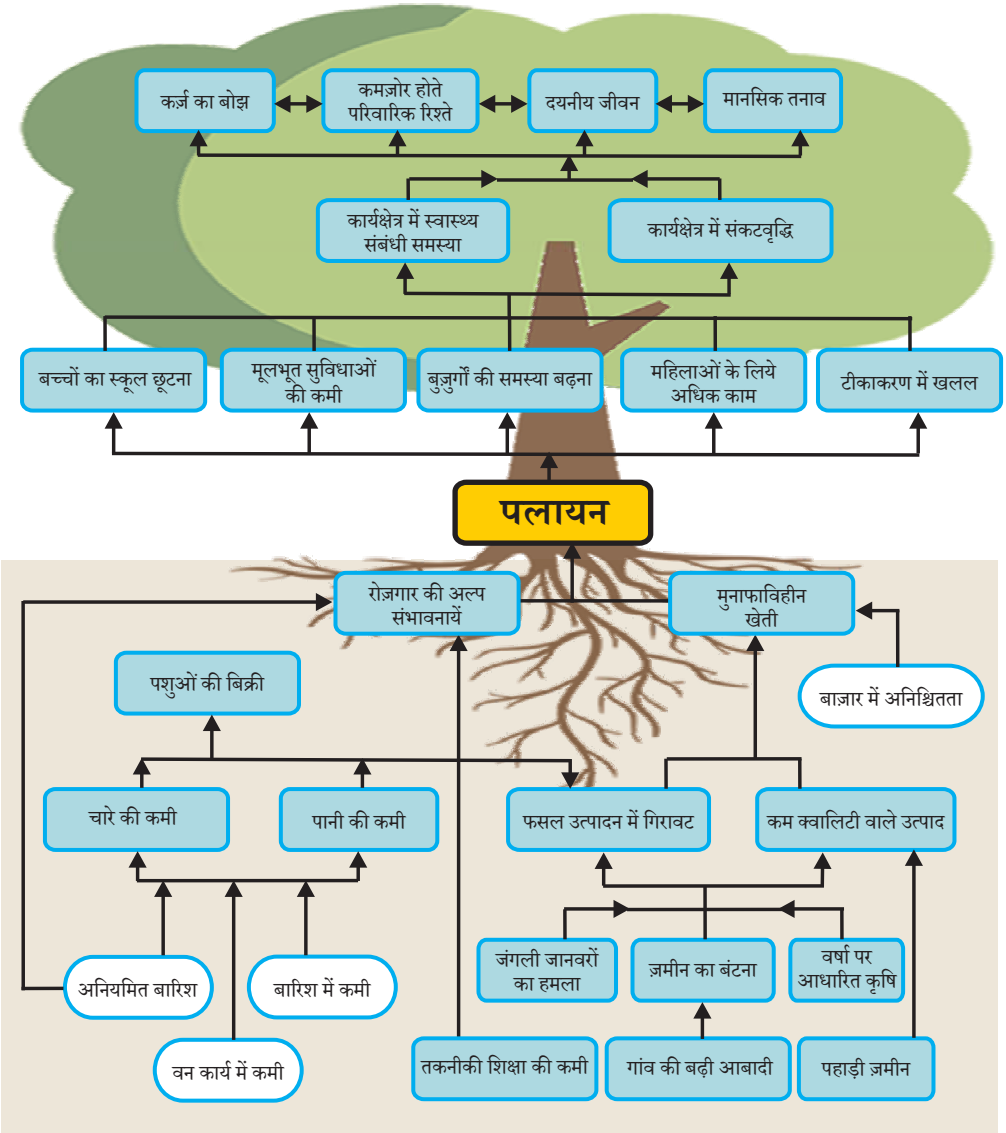

चित्र 6 –
गौखेल गांव में पलायन के कारण और प्रभाव

सामूहिक चर्चा के दौरान गांव वालों ने WOTR को बताया कि 70-80 प्रतिशत परिवार नियमित रूप से गाँव के बाहर प्रवास करते हैं। परंपरागत रूप से यहां लोग गन्ना कटाई मज़दूर के तौर पर राज्य भर में फैली गन्ना सहकारी फैक्ट्रियों में काम करते थे।

लगभग 75% प्रवासी परिवार बाहर -- मुखयतः सोलापुर, पुणे और अहमदनगर -- जाकर गन्ना कटाई का काम करते हैं। कुछ परिवार सातारा, सांगली और कोल्हापुर यहां तक कि गुजरात सीमा पर स्थित नांदुरबार जिले तक फैक्ट्रियों में जाकर काम करते हैं।

महाराष्ट्र की राजधानी मुंबई में सभी प्रकार के श्रमिकों के लिए पर्याप्त संभावनाएं हैं। इन शहरों में अच्छी सड़कें और बेहतर रेल कनेक्टिविटी मौजूद है। घर पर किसी आपात स्थिति में पहुंचने के लिए आसान साधन रहते हैं।

मुंबई और पुणे जैसे शहरों में कई लोग ट्रक ड्राइवर के तौर पर भी काम करते हैं। वह नियमित रूप से देश के विभिन्न हिस्सों (विशेषकर दक्षिण और मध्य भारत) में यात्रा करते हैं और प्रवासियों को हैदराबाद (तेलंगाना), गुलबर्गा और बीजापुर (कर्नाटक), तथा रायपुर (छत्तीसगढ़) आदि जगहों पर ले जाते हैं। कंपनी मज़दूर और ड्राइवर प्रवासी परिवारों का 10-10 प्रतिशत हिस्सा हैं। कुछेक प्रवासी व्यक्ति (लगभग 5%) दूसरे पेशों से भी आते हैं, जैसे सिक्युरिटी गार्ड, शिक्षक या सैनिक।

लोगों ने बताया कि भूमि-स्वामित्व का प्रवासी होने से कोई सम्बन्ध नहीं है। गांववालों के अनुसार जिनके पास जमीन है वह भी और जो भूमि-विहीन हैं वह भी संकट के समय में बाहर पलायन करते हैं। उसी तरह, मराठा, वंजारी और अन्य जातियों समेत हर वर्ग के लोग पलायन करते हैं।

इस चित्र 7 में विभिन्न रंगो से उन कामों को दर्शाया गया है जो प्रवासी करते हैं। ज्यादा बिंदुओं का अर्थ है अधिक परिवारों का पलायन। हरे खाने महाराष्ट्र के भीतर और भूरे खाने महाराष्ट्र के बाहर के गंतव्यों को दर्शाते हैं।

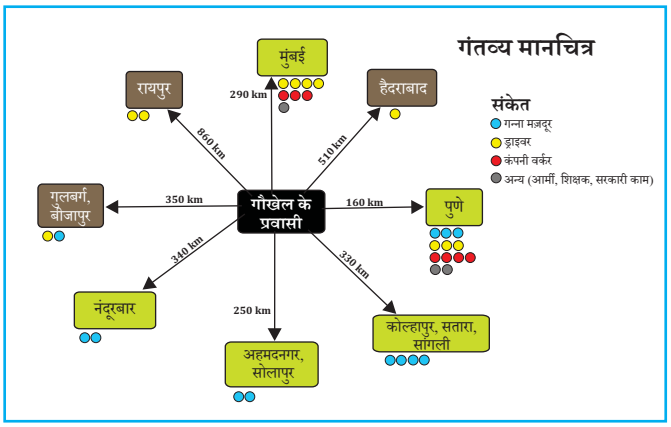

चित्र 7 – आष्टी गांव के लोगों का पलायन मानचित्र

गन्ना कटाई के लिए होने वाला पलायन मौसमी जिसकी अवधि 6 से 8 महीनों की होती है। परिवार दिवाली के बाद (सामन्यतया अक्टूबर-नवम्बर) बाहर जाते हैं और बारिश के पहले खेतों को खरीफ सीज़न के लिए तैयार करने वापस आ जाते हैं। हांलांकि प्रवासी युवा वर्ग जो अधिकतर कामगार और ड्राइवर होते हैं वह तबतक बाहर रहते हैं जबतक उनके पास काम है और कभी-कभार ही आते हैं जब कोई विशेष काम हो जैसे फसल की बोआई, शादी-विवाह या कोई अन्य पर्व। अकुशल कामगार होने के कारण उनका काम 1-2 साल से अधिक नहीं चलता। ऐसे मामलों में घर लौटने की बजाय वह दूसरा काम ढूंढते हैं और कोई काम ना मिलने पर ही वापस आते हैं। इस प्रकार, युवा वर्ग में स्थायी प्रवास की प्रवृत्ति है।

पलायन का प्रभाव निजी और पारिवारिक दोनों स्तरों पर देखने को मिलता है। यहां तक कि व्यक्तिगत स्तर पर महिलाओं, बच्चों और बुज़ुर्गों में पलायन के स्रोत और गंतव्य दोनों स्थानों पर अलग-अलग प्रभाव देखने को मिलता है।

गन्ना कटाई मज़दूर आमतौर पर एक इकाई रूप में काम करते हैं जिसमें पति और पत्नी दोनों होते हैं। वह छोटे बच्चों (5-6 साल की उम्र तक) को अपने साथ ले जाते हैं और बड़े बच्चों (5-6 साल से अधिक) को घर में दादा-दादी के पास छोड़ जाते हैं। परिवार अपने साथ काम करने वाले जानवर और खेत से फैक्ट्री तक गन्ना पहुँचाने के लिए एक गाड़ी भी अपने साथ ले जाते हैं। यदि बच्चों की देखभाल के लिए घर में कोई वयस्क या बुज़ुर्ग नहीं है तो उन्हें भी कार्यस्थल पर ले जाया जाता है। सामूहिक

गन्ने की कटाई के लिये पलायन करने वाली महिलाओं से बातचीत (फोटो – *WOTR*)

चर्चा के दौरान महिलाओं ने बताया कि 9 महीने के बच्चों को दादा-दादी के पास छोड़े जाने के भी उदाहरण हैं। आमतौर पर बच्चों का कार्यस्थल पर जाना वर्जित होता है, क्योंकि उनकी देखभाल में समय लगता है और ऐसे में काम का समय घटता है। साथ ही जो बच्चे माता-पिता के साथ खेतों पर जाते हैं वह स्कूल नहीं जा पाते।

काम की चुनौतियां

काम के स्थान पर परिवारों को फैक्ट्रियों द्वारा अस्थायी निवास (कोपी) बनाने के लिए आवश्यक सामग्री जैसे चटाई, बांस और प्लास्टिक की चादर आदि मुहैया कराई जाती हैं। लेकिन यह अल्प विकसित ढांचे इनमें रहने वालों को दिसंबर और जनवरी की कड़ाके की ठंड से नहीं बचा पाते। इन अस्थायी निवासों में बुनियादी सुविधाओं जैसे बिजली, पानी और शौचालय का भी अभाव होता है। लोगों को नहाने अथवा शौच के लिए उचित निजता नहीं मिल पाती और इसके लिए उन्हें दूर जाना पड़ता है।

गन्ना कटाई मज़दूर सामान्य रूप से बेहद कठिन परिस्थितियों में काम करते हैं। वह भोर में 4-5 बजे ही काम शुरू कर देते हैं। जाड़े के दिनों में इतनी सुबह अंधेरा ही होता है और इसलिए यह मज़दूर सिर में बांधने वाली टॉर्च का प्रयोग करते हैं। यह सांप, बिच्छू और अन्य प्रकार के कीड़ों से सुरक्षा के लिए भी ज़रूरी होता है।

प्रवासियों के बीच काम के दौरान होने वाली दुर्घटनाओं जैसे चोट लगना या मृत्यु होना की ख़बरें भी मिलती हैं। सुबह अंधेरे में ही काम शुरू करने के कारण ऐसी दुर्घटनाएं भी हुई हैं जिनमें गन्ना मज़दूरों की बैलगाड़ियों को ट्रकों ने टक्कर मारकर उनको और उनके मवेशियों को घायल कर दिया। ऐसी ही एक घटना में एक प्रवासी मज़दूर की मौत भी हो चुकी है (मामले की जांच देखें)। एक अन्य दुर्घटना में एक युवा फैक्ट्री कामगार के घुटने में चोट लग गई और वह अगले तीन साल तक काम नहीं कर पाया। इसके एवज में उसे फैक्ट्री से नाममात्र का मुआवज़ा मिला।

कार्यस्थल पर शोषण की शिकायत भी लोगों ने की है। छोटी-मोटी कहासुनी पर भी स्थानीय लोग प्रवासियों पर चढ़ बैठते हैं और उन्हें हेय दृष्टि से देखते हैं।

महिलाओं पर बोझ और बच्चों की फिक्र:

के ज़रूरी काम जैसे पानी लाना, चूल्हे की लकड़ियां लाना, निकटतम बाज़ार का पता करना आदि भी करने पड़ते हैं। बेवक्त

खाना, अस्वच्छ रहन-सहन और अधिक काम का बोझ महिलाओं के स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। प्रवासी महिला यदि गर्भवती हो तो भ्रूण के विकास पर असर होता है। बच्चों का टीकाकरण छूट जाता है। नियमित रूप से न नहा पाने के कारण त्वचा पर चकत्ते और दूसरी बीमारियां भी हो जाती हैं। माता-पिता के साथ 6-8 महीने प्रवास करने वाले 0 से 6 साल के उम्र तक के बच्चों का वजन 2-3 किलो घट सकता है। इसकी भरपाई करने में और 4-5 महीने लग जाते हैं और बच्चे के सर्वांगीण विकास पर असर पड़ता है। एक आंगनवाड़ी शिक्षक के अनुसार उनके केंद्र पर 0-6 साल की उम्र के 140 बच्चों में से 28 बाहर चले गए।

महिलाओं की सामूहिक चर्चा के दौरान एक महिला ने बताया, ***"हम सुबह 3 बजे ही उठ जाते हैं और परिवार के लिए खाना बनाते हैं। फिर हम गन्ना काटने चले जाते हैं और शाम को 6 बजे के बाद लौटते हैं। हमें दूर जाकर पानी भी लाना होता है, बच्चों की देखभाल करनी होती है और मवेशियों पर भी ध्यान देना होता है। महिलाओं को पुरुषों से कहीं अधिक काम करना पड़ता है।"***

आमतौर पर बड़े भाई-बहनों को छोटों की देखभाल करनी होती है जब माता-पिता काम पर जाते हैं। लेकिन उन्हें अकेले छोड़ना भी खतरनाक हो सकता है। छोटे घरों में खेलने या चलने के दौरान जलती हुई मोमबत्तियों के गिर जाने से आग लग सकती है। एक महिला ने ऐसी ही घटना का जिक्र किया जो उसके बच्चों के साथ हुई थी। ऐसी घटनाओं से बचने के लिए माएं छोटे बच्चों को कार्यस्थल पर ले जाने को तरजीह देती हैं। लेकिन जब बच्चे घर से दूर होते हैं तो पढ़ाई और टीकाकरण छूट जाता है।

स्वास्थ्य भी महिलाओं की एक चिंता है। कार्यस्थल पर डॉक्टर मौजूद होते हैं लेकिन वहां उन्हें दवाएं खरीदनी पड़ती हैं जबकि उनके गांव में उन्हें दवाएं मुफ्त मिलती हैं। यह उनके लिए एक अतिरिक्त खर्चा होता है। जगह बदलने के साथ पीने के पानी का स्रोत भी बदलता रहता है -- टैंकर, नल या कुंआ।

सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का छूट जाना

कई बार प्रवासी परिवारों को अपने सामाजिक लाभ छोड़ने पड़ते हैं। जहां पूरा परिवार पलायन करता है वहां उन्हें पब्लिक डिस्ट्रीब्यूशन सिस्टम (PDS) के ज़रिये मिलने वाला राशन बंद हो जाता है। चर्चा के दौरान महिलाओं ने बताया कि उन्होंने प्रधानमंत्री उज्जवला योजना के तहत एलपीजी कनेक्शन के लिए आवेदन किया था। लेकिन आवेदन की प्रोसेसिंग के वक्त वह गांव में नहीं थीं जिस कारण उनमें से कई लोगों को कनेक्शन नहीं मिले।

3.4 जन समाधान (लोगों के सुझाव)

गांव से पलायन रोकने के लिए कई तरह के कदम उठाने की आवश्यकता है जिससे गांव में रहने के लिए लोगों को, विशेषकर कामकाजी आयुवर्ग को, प्रोत्साहन मिले। यह पूछने पर कि उन्हें गांव में रुकने के लिए किस तरह के सहयोग की आवश्यकता होगी, स्थानीय लोगों ने कई तरह के सुझाव दिए (चित्र 8 देखें)।

सूखे की रोकथाम हेतु एकीकृत जलसंभर विकास

एकीकृत जलसंभर विकास की पद्धति से मृदा और पानी का संरक्षण एक महत्त्वपूर्ण और आवश्यक कदम है। गांव की अधिकतर भूमि पथरीली है और वर्षा का पानी गांव के बाहर बह जाता है, जिससे पानी की कमी होती है। खेत और ग्राम दोनों स्तरों पर जल संरचनाएं (जैसे निरन्तर समोच्च खत्तियां, रोधी या चेक बाँध, केटी वीयर, रिसाव तालाब, फार्म बंड, ड्रेनेज लाइन ट्रीटमेंट इत्यादि) बनाने से बाहर बह जाने वाले पानी को रोकने में मदद मिलेगी और गर्मी के मौसम में मनुष्यों और मवेशियों के लिए जल की उपलब्धता बढ़ेगी।

जलवायु प्रत्यास्थी कृषि पद्धतियों को समर्थन:

दूसरा महत्त्वपूर्ण सहयोग जिसकी मांग लोगों द्वारा की गई वह है जलवायु-प्रत्यास्थी पद्धतियां जिनमें एकीकृत पोषक तत्व प्रबन्धन (Integrated Nutrient Management, INM), एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन (Integrated Pest Management, IPM), उचित बीज का चुनाव, कुशल जल प्रबंधन आदि सम्मिलित हैं। पिछले कुछ सालों में वर्षा अनियमित रही है। बेमौसम और अनियमित वर्षा और लम्बे समय तक सूखे की मार पड़ी है। इसके अलावा कीड़े लगने और मुरझाने से भी फसल का नुकसान हुआ है और ख़राब गुणवत्ता की उपज हुई है। यहां तक कि नवम्बर के पहले महीने में जब शोध टीम गांव में थी तब

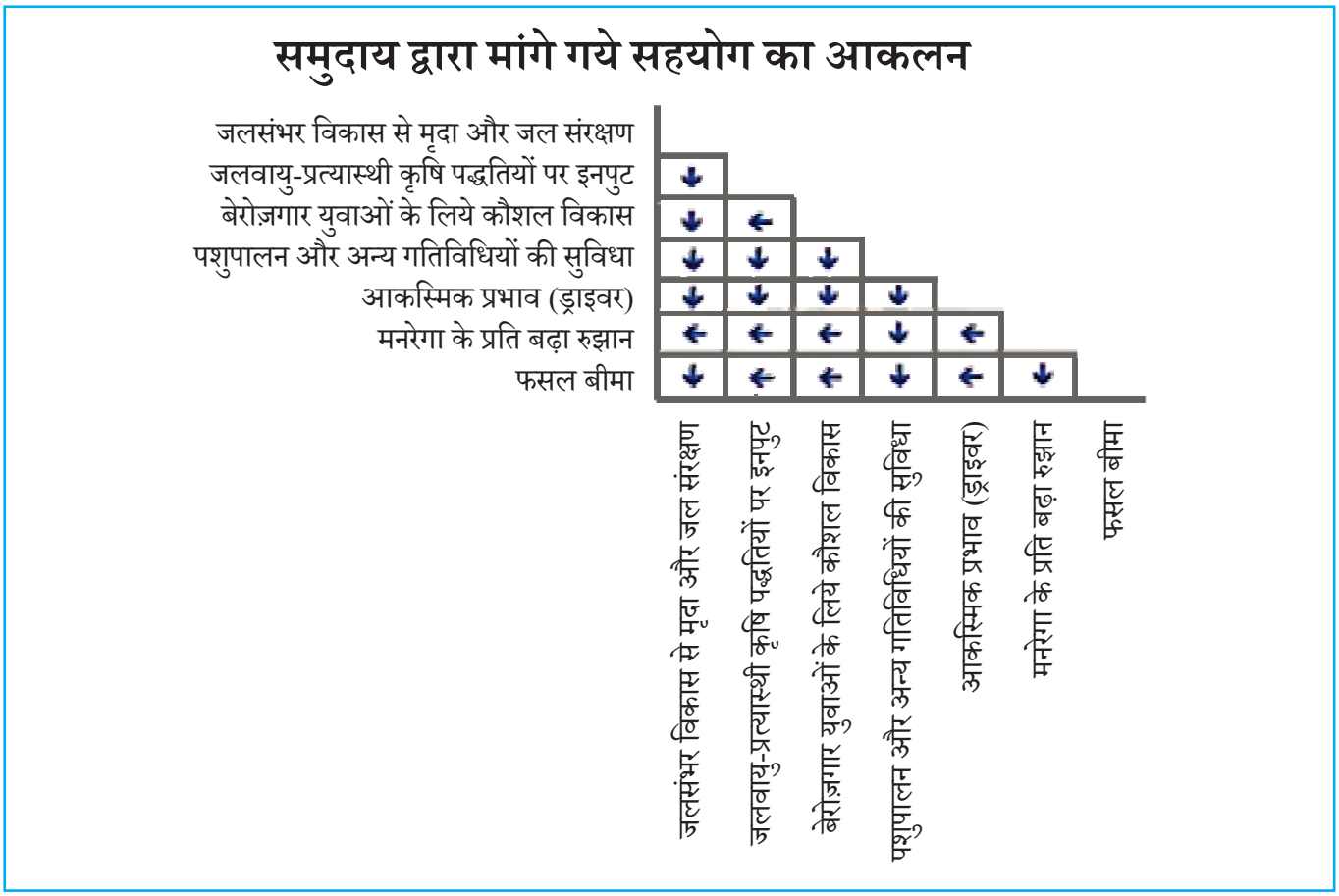

चित्र 8 – पलायन कम करने के लिये समुदाय द्वारा मांगे गये सहयोग का आकलन

भी थोड़ी वर्षा हुई जोकि उस समय के लिए असामान्य है।

प्रभावी फसल बीमा नीति:

कई किसानों ने कहा कि फसल का बीमा करने की भी आवश्यकता है, विशेषकर वर्तमान जलवायु परिवर्तनों के कारण। इसके साथ जंगली जानवरों द्वारा भी फसल नष्ट की जाती है। किसानों ने बताया कि इस कारण उन्हें बड़ी मात्रा में फसल, विशेषकर खाद्यान्नों का नुकसान झेलना पड़ा है, जो कि मौजूदा फसल बीमा योजनाओं के अंतर्गत नहीं आता। उनकी मांग है कि जानवरों द्वारा फसल नष्ट होने पर भी मुआवज़े की कोई व्यवस्था बनाई जाए। कई लोग जो ड्राइवर हैं और विभिन्न राज्यों में दूर-दूर तक यात्रा करते हैं, उन्होंने दुर्घटना बीमा की भी मांग की। यह उन्हें दुर्घटना की स्थिति में भी आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान करेगा।

बेरोज़गार युवाओं का कौशल विकास:

गांव कई शिक्षित युवा बेरोज़गार हैं। उनमें से कईयों ने शिक्षक बनने के लिए डिप्लोमा कर रखा है। लेकिन दुर्भाग्यवश उन्हें नौकरी नहीं मिली है। ऐसे युवा अब महाराष्ट्र लोक सेवा आयोग की परीक्षाएं देने की तैयारी कर रहे हैं। कुछ पुलिस में भी जाना चाहते हैं। युवाओं ने गांव में एक सार्वजनिक ग्रंथालय की भी मांग की जहां किताबें और पढ़ने की सामग्री उपलब्ध रहे। यह कईयों के लिए बहुत मंहगा और पहुंच से बाहर होता है। पुलिस में भर्ती होने के लिए जिस शारीरिक क्षमता की ज़रूरत है उसके विकास के लिए गांव में एक व्यायामशाला की भी मांग है। सामूहिक चर्चा के दौरान एक युवा ने कहा, "यदि हमें यह सुविधाएं नहीं मिलती हैं तो भविष्य में सूखे की स्थिति में हम भी प्रवासी ही होंगे।"

बेरोज़गार युवाओं, महिलाओं और पुरुषों के लिए कौशल विकास की मांग कई समूहों से बातचीत के दौरान उठी। शिक्षित युवा अब खेती नहीं करना चाहते क्योंकि अनिश्चित और अस्थिर आय के कारण वह उदासीन हो चुके हैं।

3.5 सन्दर्भ

1 T E R I. 2014 Assessing Climate Change Vulnerability and Adaptation Strategies for Maharashtra: Maharashtra State Adaptation Action Plan on Climate Change (MSAAPC) New Delhi: The Energy and Resources Institute. 302 pp. [Project Report No. 2010GW01]

2 Why drought-prone Marathwada needs to look beyond the immediate monsoons, By G Seetharaman. https://economictimes.indiatimes.com/news/politics-and-nation/why-the-drought-prone-marathwada-needs-to-look-beyond-the-immediate-monsoons/articleshow/57966669.cms?from=mdr

3 Kulkarni, Ashwini & Gadgil, Sulochana & Patwardhan, Savita. (2016). Monsoon variability, the 2015 Marathwada drought, and rainfed agriculture. 111. 1182-1193. 10.18520/cs/v111/i7/1182-1193.

4 T E R I. 2014 Assessing Climate Change Vulnerability and Adaptation Strategies for Maharashtra: Maharashtra State Adaptation Action Plan on Climate Change (MSAAPC) New Delhi: The Energy and Resources Institute. 302 pp. [Project Report No. 2010GW01]

5 (For a historical analysis, the 0.25*0.25 high spatial resolution historical climate data of Ashti block was collected from the India Meteorological Department, Pune, India. The reference of this data collection is taken from the Development and analysis of a new high spatial resolution (0.25*0.25) 20 long periods (1901–2010) daily gridded rainfall data set over India. The Future Projection datasets Near Century, Mid Century, and End Century are the latest product from the NASA Earth Exchange (NEX), a big-data research platform within the NASA Advanced Supercomputing Centre at the agency's Ames Research Centre; NEX released similar climate projection data to quantify climate risks to the nation's agriculture, forests, rivers, and cities. The respective data is extracted from the following link: /link: https://cds.nccs.nasa.gov/nex-gddp/).

4 केंद्रपाड़ा, ओडिशा: बढ़ते समुद्र से पलायन

चित्र 9: ओडिशा का मानचित्र, अनुसंधान स्थानों के साथ

केंद्रपाड़ा जिला तटीय ओडिशा का एक हिस्सा है। यह नाज़ुक वातावरण, बाढ़ और चक्रवातों की निरंतर संभावना, अल्प और अत्यधिक परिवर्तनशील वर्षण, पानी की भारी कमी, और नियमित वर्षा की विफलता के लिए जाना जाता है। हाल-फिलहाल में यह सूखा-प्रवृत्त जिले के रूप में भी उभरा है। केंद्रपाड़ा जिला ओडिशा में सबसे अधिक चक्रवात प्रभावित जिलों में से भी एक है।[1]

विश्व बैंक समर्थित एकीकृत तटीय क्षेत्र प्रबंधन (इंटीग्रेटेड कोस्टल ज़ोन मैनेजमेंट) परियोजना के अंतर्गत की गई क्षेत्रीय तटीय प्रक्रिया मॉडलिंग ने पाया है कि ओडिशा के समुद्र तट के दस प्रतिशत भाग पर -- मुख्य रूप से पुरी, केंद्रपाड़ा और गंजम जिलों में -- समुद्री कटाव का खतरा बहुत अधिक है। अध्ययन के अनुसार इन क्षेत्रों में कटाव की आवृत्ति और परिमाण में हाल के वर्षों में वृद्धि हुई है।[2]

चिकित्सा सुविधाओं की कमी, कुपोषण, शुद्ध पेयजल की बाधित आपूर्ति, और उचित सफ़ाई व्यवस्था के अभाव में महिलाओं और बच्चों के जीवन पर खतरा बढ़ता जा रहा है।[3]

4.1 केंद्रपाड़ा जिले का जलवायु परिवर्तन परिदृश्य

पिछले कुछ दशकों से ओडिशा हीटवेव से लेकर महाचक्रवात, सूखे से लेकर बाढ़ आदि बदतर होती चरम मौसम की स्थितियों का सामना कर रहा है जिसमें जान-माल की बहुत हानि हुई है। 1998 में हीटवेव ने राज्य में लगभग 1,500 लोगों की जान ले ली थी। राज्य के दैनिक अधिकतम और न्यूनतम तापमान का औसत धीरे-धीरे बढ़ रहा है। राज्य के संपूर्ण दक्षिणी और पश्चिमी हिस्से में दैनिक अधिकतम और न्यूनतम तापमान में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है।

केंद्रपाड़ा और जगतसिंहपुर तटीय ओडिशा में चक्रवातों और जलवायु परिवर्तन से प्रभावित सबसे संवेदनशील जिलों में से हैं। पिछले कुछ दशकों में ओडिशा के तटों ने तीन बड़े विनाशकारी चक्रवात देखे हैं। सुपर साइक्लोन, फाइलिन और हुदहुद ने इस क्षेत्र में लोगों की आजीविका को बुरी तरह प्रभावित किया है।[4]

चक्रवात

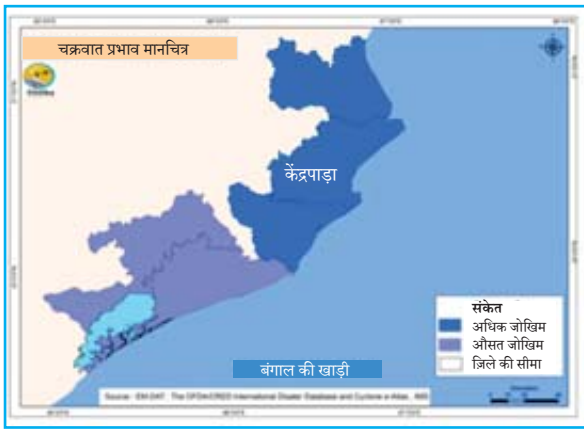

चक्रवात के खतरे को बताता मानचित्र इंगित करता है कि अध्ययन के विषय गांव अति संवेदनशील क्षेत्र में आते हैं। ओडिशा के जगतसिंहपुर, केंद्रपाड़ा और भद्रक जिले भारत के कास्ट कोस्ट में बहुत अधिक संवेदनशील जिले हैं।

बाढ़

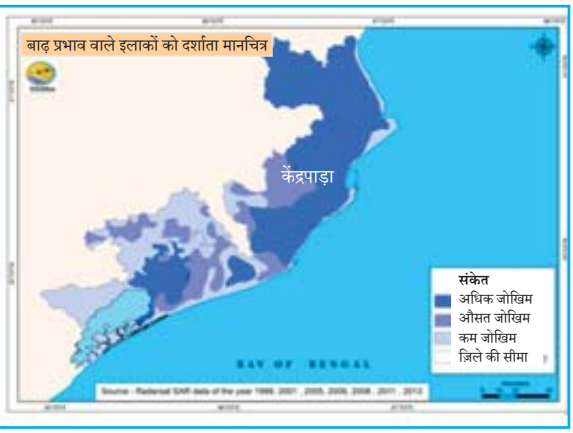

यह मानचित्र तटीय क्षेत्र के बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों को दर्शाता है। अध्ययन के विषय गांव अति संवेदनशील क्षेत्र की श्रेणी में आते हैं। अध्ययन के विषय गांव हंसुआ नदी के तट पर स्थित हैं जो ब्राह्मणी की सहायक नदी है। हंसुआ नदी का मुहाना बंगाल की खाड़ी में गिरता है। 1967-2015 के बाद से इस क्षेत्र में 21 बार बाढ़ आई है।

चित्र 10: ओडिशा के चक्रवात और बाढ़ संभावित क्षेत्र

महानदी के डेल्टा में तीन प्रमुख नदियों -- महानदी, ब्राह्मणी, और बैतरणी -- के बाढ़ के पानी के बीच अंतर्मिश्रण के कारण बाढ़ का खतरा सदैव बना रहता है। राज्य के तटीय क्षेत्रों में विनाशकारी उच्च-ज्वार बाढ़ देखी गई है। ओडिशा की पूरी तटरेखा तूफानी लहरों, तटीय बाढ़ और नदी की बाढ़ से ग्रस्त है, जिसके साथ-साथ अक्सर भारी वर्षा होती है।[6]

चेन्नई के नेशनल सेंटर फॉर कोस्टल रिसर्च द्वारा जुलाई 2018 के एक अध्ययन में पाया गया कि ओडिशा ने 1999 से 2016 के बीच अपने 485 किलोमीटर लंबी तटरेखा का 28 प्रतिशत हिस्सा, 153.8 किलोमीटर, समुद्री जल के अतिक्रमण के कारण खो दिया। अध्ययन ने यह भी पाया कि बढ़ते समुद्र के स्तर और बदलते हवा के पैटर्न रिहायशी क्षेत्रों में उच्च ज्वार की लहरों और जलभराव का कारण बन रहे हैं (चित्र 9 देखें)।

भारतीय राष्ट्रीय महासागर सूचना सेवा केंद्र (INCOIS) के कोस्टल वल्नेरेबिलिटी इंडेक्स (CVI) अध्ययन के अनुसार समुद्र के जलस्तर में वृद्धि, तटीय भू-आकृति, ज्वारीय परिसर और ओडिशा तट क्षेत्र में उठान के कारण खतरे, नुकसान और क्षति की मात्रा राज्य के लगभग 76 किलोमीटर तटीय विस्तार पर 'कम' -- गंजम, चिलिका, दक्षिणी पुरी और केंद्रपाड़ा के कुछ हिस्सों में; लगभग 297 किलोमीटर पर 'मध्यम' --- उत्तरी गंजम, चिलिका, मध्य पुरी, जगतसिंहपुर, केंद्रपाड़ा, दक्षिणी भद्रक, और बालासोर में; और लगभग 107 किलोमीटर पर 'उच्च' -- उत्तरी पुरी, जगतसिंहपुर के कुछ हिस्से, केंद्रपाड़ा, उत्तरी और दक्षिणी भद्रक, और दक्षिणी बालासोर -- है।[7]

जगतसिंहपुर और केंद्रपाड़ा में महाचक्रवात के कारण वन आवरण 50 प्रतिशत तक कम हो गया है। वनस्पति के इस नुकसान के बाद क्षेत्र की सूक्ष्म जलवायु परिवर्तित हो गई है। 1998-2000 के दौरान तटीय क्षेत्र के तापमान में व्यापक उतार-चढ़ाव देखने को मिला तथा औसत तापमान में वृद्धि हुई है। 1999 के महाचक्रवात के बाद हुए जलवायु परिवर्तन के कारण संभवतः राज्य के आम और महुआ के पेड़ असामान्य रूप से जल्दी पुष्पित हो जाते हैं।[8]

ओडिशा के पूरे तटीय क्षेत्र पर कृषि अब एक गंभीर जलवायु संकट का सामना कर रही है। जलवायु परिवर्तन का गरीबों के स्वास्थ्य और आजीविका पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, उनकी अरक्षितता बढ़ेगी और राज्य का विकास बाधित हो सकता है। यह स्पष्ट है कि जलवायु परिवर्तन ओडिशा में पानी की कमी और खाद्य तथा स्वास्थ्य संकट में अत्यधिक वृद्धि करने में सक्षम है।

4.2 केंद्रपाड़ा जिले का प्रवास परिदृश्य

केंद्रपाड़ा जिले के पेंथा गांव में तटरेखा का कटाव (फोटो: संतोष पटनायक)

भारत के सबसे गरीब राज्यों में से एक माने जाने वाले ओडिशा की 47 प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा से नीचे रहती है (बीपीएल सर्वेक्षण, 1997)। तेंदुलकर समिति के अनुसार ओडिशा में लगभग 57.2 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे हैं। वहीं एन सी सक्सेना समिति का मानना है कि यह आंकड़ा 84.5 प्रतिशत है। 2001 की जनगणना ने ओडिशा को एक मुख्य 'माइग्रेंट-सेंडिंग' राज्य कहा, जहां से 9,37,148 प्रवासी अन्य राज्यों में गए। हालांकि, एक अनौपचारिक अनुमान के अनुसार हर साल 25 लाख लोग ओडिशा से पलायन करते हैं। इसमें से तटीय क्षेत्र का योगदान 45 प्रतिशत है। इसके विपरीत, दक्षिणी, पश्चिमी और उत्तरी जिले शेष 55 प्रतिशत के लिए ज़िम्मेदार हैं।[9]

राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण कार्यालय (एनएसएसओ) द्वारा 2007-08 में किये गए 64वें दौर के सर्वेक्षण ने पाया कि ओडिशा से प्रवासियों की संख्या कुल जनसंख्या का 18 प्रतिशत है, जबकि राष्ट्रीय आंकड़ा 29 प्रतिशत था।

ओडिशा में प्रवास को दादन प्रणाली के नाम से जाना जाता है। यह प्रणाली, जिसमें श्रमिकों को अग्रिम भुगतान के माध्यम से भर्ती किया जाता है, लंबे समय से प्रचलन में है। आदिवासी और ग्रामीण ओडिशा के लोगों को अक्सर श्रम ठेकेदारों द्वारा भर्ती किया जाता था और भारत के विभिन्न राज्यों में चाय बागानों, निर्माण स्थलों, और ईंट भट्ठों में काम करने के लिए ले जाया जाता था। इस क्षेत्र को अपने कुशल श्रमिकों -- विशेषकर नलसाज़ और राजमिस्त्री -- के लिए जाना जाता है जिसपर हम आगामी खंडों में विस्तार से चर्चा करेंगे।

तटीय क्षेत्रों के भीतर केंद्रपाड़ा और खोरदा जिलों में परिवारों के प्रवास का प्रतिशत -- क्रमशः 47 और 42 -- अधिक है। यह क्षेत्र प्राकृतिक आपदाओं से ग्रस्त है, और चक्रवात एक सामान्य घटना है, जो हर दो साल में इस क्षेत्र में स्थानीय रोजगार की नियमितता को बाधित करता है। इसका सामना करने के लिए इस क्षेत्र से बड़ी संख्या में परिवार प्रवास करते हैं।

कृषि से घटती आय और ग्रामीण परिवारों की केवल कृषि पर निर्भर रहने के अक्षमता के साथ ओडिशा के ग्रामीण क्षेत्रों में 'माईग्रेरियन' आजीविका का उदय हो रहा है, जिसमें प्रवास और कृषि आजीविका के मुख्य साधन हैं, सालाना आय में जिनका योगदान 55-60 प्रतिशत से अधिक है। NSSO के आंकड़ों से पता चलता है कि 1990 के दशक के बाद से ओडिशा में अन्तर्राज्यीय प्रवासियों द्वारा भेजे गए धन पर निर्भरता तेजी से

बढ़ी है (तुम्बे, 2010)। 2007-08 में ग्रामीण ओडिशा को इस प्रकार 1425 करोड़ डॉलर प्राप्त हुए, और वह देश में छठे स्थान पर रहा।[10]

तटीय ओडिशा का केंद्रपाड़ा जिला अपने नलसाज़ों (प्लम्बर्स) के लिए जाना जाता है। इन कामगारों को देश के सभी हिस्सों में काम मिलता हैं, विशेषकर मुंबई, दिल्ली, बैंगलोर, हैदराबाद, अहमदाबाद और कोलकाता जैसे महानगरों में। औसतन 29 वर्ष की आयु और माध्यमिक शिक्षा के साथ, श्रमिकों की मासिक आय रु 7,100 रु बताई जाती है। ओडिशा में प्रवास पर किए गए 64वें दौर के राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण (एनएसएस) ने सुझाया कि राज्य से प्रवास का मुख्य कारण भूकंप, सूखा, बाढ़ और सुनामी जैसी प्राकृतिक आपदाएं हैं।[11]

आजीविका के बेहतर अवसर और बेहतर आय ओडिशा के बंगाल और महानदी डेल्टा से पलायन को प्रोत्साहित करते हैं। ओडिशा के कुशल कामगार लंबे समय से अधिक वेतन के लिए भारत के शहरी क्षेत्रों में पलायन करते हैं। लेकिन अब मानसून के समय बाढ़, उष्णकटिबंधीय चक्रवात, समुद्र-स्तर में वृद्धि, और समुद्र तट के कटाव के कारण लोग महानदी के डेल्टा क्षेत्र से बाहर निकल रहे हैं।

4.3 प्रवास के कारण और प्रभाव: सातभाया गांव के समुदायों की आवाज़

सातभाया केंद्रपाड़ा जिले में बंगाल की खाड़ी के निकट सात गांवों का एक समूह है। यह 1960 के बाद से विभिन्न जलवायु संकटों -- चक्रवात, समुद्र-स्तर में वृद्धि, समुद्र तट कटाव और तटीय बाढ़ -- के कारण अपने अस्तित्व पर खतरे का सामना कर रहा है। सातभाया सात गावों से बने पांच गावों में से एक था। तटीय अनुसंधान के लिए राष्ट्रीय केंद्र (एनसीसीआर) के अनुसार पारादीप बंदरगाह, जो सातभाया से 90 किमी दूर है, पर प्रतिवर्ष 1.03 मिमी की दर से कटाव हो रहा है।[12]

चक्रवातों की एक श्रृंखला -- जिसमें 1971 का एक चक्रवात, 1999 का महाचक्रवात, 2013 में फाइलिन, 2014 में हुदहुद, २०१९ में फणी और बुलबुल -- ने लगातार और नियमित रूप से इस क्षेत्र पर हमला किया है और निवासियों के कृषि तथा मछली पालन पर आधारित आजीविका पैटर्न को नष्ट किया है।

इसके अलावा समुद्र-स्तर में वृद्धि के कारण गावों का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र जलमग्न हो गया। गांव का क्षेत्र 1930 में 350 वर्ग किलोमीटर से घटकर 2015 में 140 वर्ग किलोमीटर रह गया।[13] अपनी कृषि और आवासीय भूमि के जलमग्न हो जाने पर निवासी गांव से दूर जाने लगे।

समुद्र-स्तर में वृद्धि के कारण सातभाया से विस्थापित हुए लोगों के लिए एक पुनर्वास कार्यक्रम 2015 में शुरू किया गया था। पुनर्वास कॉलोनी बगापटिया से सटे एक गांव में स्थापित की गई थी, जो भीतरकनिका राष्ट्रीय अभयारण्य के अंतर्गत है। पुनर्वास कॉलोनी 132.9 एकड़ में स्थापित की गई है, जिसमें से 48.5 एकड़ निजी भूमि है। सातभाया के 771 परिवारों में से 571 को बगापटिया पुनर्वास कॉलोनी में स्थानांतरित कर दिया गया है। दो सौ परिवार अभी भी सातभाया गांव में निवास कर रहे हैं।

राज्य सरकार ने बगापटिया में मकान बनाने के लिए विस्थापितों को भूमि और धन मुहैया कराया। लेकिन अभी भी निवासियों को भूमि के स्वामित्व के दस्तावेज, जिन्हें पट्टा कहते हैं, नहीं प्राप्त हुए हैं।

पुनर्वास के अंतर्गत कृषि के लिए कोई भूमि प्रदान नहीं की गई, जिससे सातभाया का आजीविका पैटर्न नष्ट हो गया। जिन लोगों के पास कभी उपजाऊ भूमि और मत्स्यधन था, वह अब अपने उपभोग के लिए खाद्यान्न, सब्जियां और मछली खरीदने के लिए मजबूर हैं। चक्रवातों और बाढ़ के दौरान नावों, मछली पकड़ने के जाल और अन्य सामान के नुकसान के कारण कई मछुआरों ने अपना पेशा छोड़ दिया है। सातभाया के किसान और मछुआरे अब आजीविका की तलाश में बगापटिया से पलायन करने को मजबूर हो रहे हैं।

बगापटिया में आय के अवसरों की कमी और कर्ज़ अदायगी के दबाव के कारण लोग पलायन कर रहे हैं। लोगों ने नए घरों की मरम्मत या निर्माण के लिए कर्ज़ लिया है क्योंकि चक्रवात और समुद्र-स्तर में वृद्धि के कारण वह उन्हें बार-बार नष्ट होते हैं। अब तक लगभग 2000 लोग गांव से पलायन कर चुके हैं (चित्र 11

देखें)।

नीलमणि दास ने शिकायत की कि सड़कों के कारण बाहरी दुनिया से बेहतर संचार और स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच के अलावा बगापटिया में जीवन नियमित आय के अभाव में संघर्षपूर्ण है। भूमि के बिना लोगों के लिए कृषि का विकल्प अनुपलब्ध है इसलिए वह प्रवास करते हैं। प्रवासियों में ज्यादातर पुरुष होते हैं जो वर्ष का अधिकांश भाग बाहर ही बिताते हैं। महिलाएं, बुजुर्ग, और 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चे जो गांव में ही रहते हैं वह समय-समय पर प्रवासियों द्वारा भेजे गए पैसों पर ही निर्भर रहते हैं।

महिलाओं और बच्चों पर प्रभाव

बगापटिया कॉलोनी में पुनर्वास सातभाया की महिलाओं के लिए भावनात्मक रूप से एक तनावपूर्ण प्रकरण था। इससे पहले कि वे विस्थापित होने के आघात से उबर पातीं, उन्हें पुनर्वास कॉलोनी में घर बसाना था।

यह विशेष रूप से सातभाया की महिलाओं के लिए बेहद कठिन था क्योंकि उन्हें दलदली भूमि पर स्थानांतरित कर दिया गया था। वह रसोई के बगीचे नहीं लगा सकती थीं और पशुपालन का भी विकल्प नहीं था। यह उनके लिए पारिवारिक आय और भोजन दोनों के महत्वपूर्ण स्रोत थे। उन्हें मजबूरन अपनी गायों को सातभाया में ही छोड़ना पड़ा था।

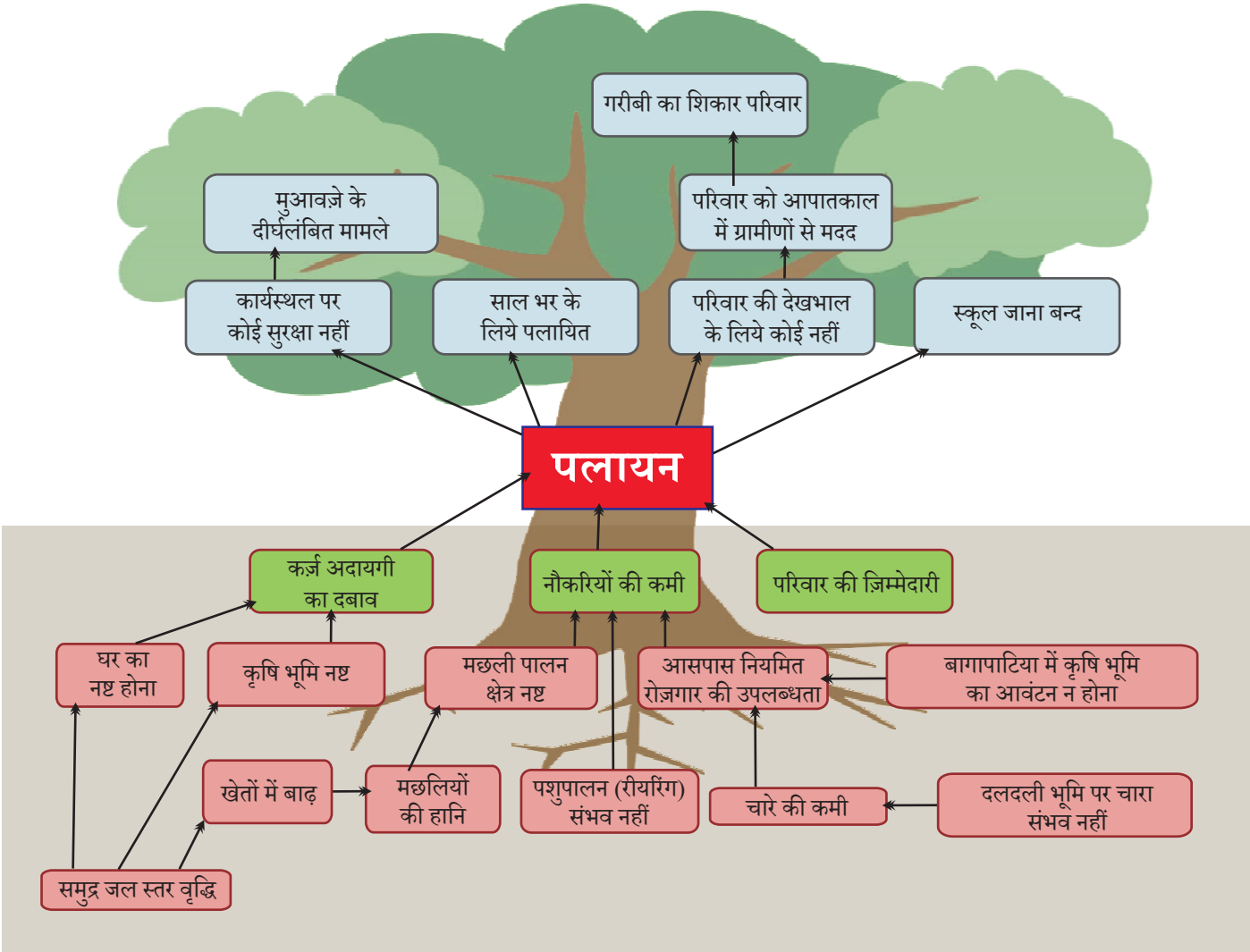

चित्र 11: सातभाया गांव का समस्या वृक्ष

बगापटिया में पुनर्वास कॉलोनी (फोटो: संतोष पटनायक)

बगापटिया कॉलोनी निवासी गीतांजलि बेहरा ने भूमि और परिवार की हानि के कारण अपनी दुर्दशा पर दुःख व्यक्त किया। उन्होंने कहा, "*मेरी 5 एकड़ भूमि समुद्र में समा गई और मेरा संयुक्त परिवार बिखर गया क्योंकि सरकार ने हमें अलग-अलग प्लाट दिए। मेरी भूमि सेलाइन हो गई और मैं उसपर कोई फसल नहीं उगा सकती। यहां स्थिति उतनी ही खराब है जितनी गांव में थी। मैंने अपनी आय खो दी और यहां एक छोटी सी दुकान भी अच्छी नहीं चलती।*"

क्षेत्र के 571 घरों में से केवल 150 घरों में शौचालय बनाए गए हैं, जिससे स्वास्थ्य और स्वच्छता पर प्रतिकूल प्रभावित पड़ता हैं। क्षेत्र में खुले में शौच का प्रचलन है और यह कई उभरते हुई स्वास्थ्य समस्याओं जैसे पाचन और त्वचा की दिक्कतों के कारण के रूप में देखा जाता है। निवासियों को पानी के कनेक्शन के साथ शौचालय की आवश्यकता महसूस होती है। चूंकि जल आपूर्ति परियोजना का निर्माण पूरा हो चुका है, इसलिए निवासियों को पानी के कनेक्शन प्राप्त होने की उम्मीद है।

बगापटिया में ऐसे महिला-संचालित घरों की संख्या में वृद्धि हुई है जहां युवा वर्ग (पुरुष और महिला दोनों) और पुरुष बेंगलुरु, केरल और तमिलनाडु चले गए हैं। पुरुषों की अनुपस्थिति में महिलाओं ने अपने स्वास्थ्य और सलामती को खतरे में डालते हुए परिवार की जिम्मेदारी उठाई।

"*आपातकालीन स्थिति में पड़ोसी और रिश्तेदार प्रवासियों के परिवारों की सहायता करते हैं,*" पुनर्वास कॉलोनी के निवासी सुदर्शन राउत कहते हैं। जब पुरुष साल के अधिकांश समय अनुपस्थित रहते हैं तो सामाजिक सुरक्षा जाल उनके परिवारों की सहायता करता है।

लक्ष्मी राउत, पुनर्वास कॉलोनी की एक निवासी, अपनी 2 एकड़ भूमि और किचन गार्डन को याद करते हुए कहती हैं, "*मेरे खेत और बगीचे से मेरे परिवार के लिए पर्याप्त भोजन मिलता था। मैंने वह सब खो दिया, और अब मेरे पति एक दिहाड़ी मजदूर के रूप में केरल गए हैं। हमारा गुज़ारा समय-समय पर उनके द्वारा भेजे गए*

पैसे से ही चलता है। मुझे यहां बच्चों का कोई भविष्य नहीं दिखता।"

स्कूलों और शिक्षकों की कमी के कारण गांव में बच्चों की पढ़ाई पर बुरा प्रभाव पड़ा है। परिणामस्वरूप, बच्चों को प्रदान की जाने वाली शिक्षा की गुणवत्ता में काफी गिरावट आई है। हाईस्कूल के अभाव में बच्चों को मजबूरन सातवीं कक्षा के बाद अपनी शिक्षा रोकनी पड़ती है, या फिर गोपालपुर हाईस्कूल तक 15 किमी की यात्रा करनी पड़ती है। शिक्षा और पारिवारिक आय के अभाव में 14-15 वर्ष की आयु से ऊपर के बच्चे पलायन करते हैं। वह आमतौर पर परिवार के वयस्कों के साथ जाते हैं और टेक्सटाइल मिलों में काम करते हैं।

गंतव्य पर चुनौतियां:
गांव के निवासी ज्यादातर हरियाणा, दिल्ली, बैंगलोर, केरल और सूरत में प्रवास करते हैं। प्रवासी मज़दूर गंतव्य पर प्लाईवुड उद्योग, गारमेंट मैनुफैक्चरिंग उद्योग या प्लंबिंग से जुड़े हुए हैं। केरल और दिल्ली में वह ज्यादातर नलसाज़ या दर्जी का काम करते हैं। हरियाणा में वह अधिकांशतः प्लाईवुड उद्योगों में लगे हुए हैं।

बगापटिया के वार्ड सदस्य मधुसूदन मलिक पुनर्वास कॉलोनी में रहने के दैनिक संघर्ष को याद करते हैं। वह कहते हैं, "*हमारे यहां उचित सुविधाएं नहीं हैं। कोई अच्छा स्कूल, स्वास्थ्य केंद्र यहां तक कि ठीकठाक सड़क भी नहीं है। बरसात के मौसम में गांव में प्रवेश करना ही मुश्किल है। सरकार हमें भूल गई है। आय के स्रोतों के बिना यहां परिवार चलाना कठिन है। सिर्फ वही परिवार संपन्न हैं जहां दूसरे राज्यों से पैसे आते हैं।*"

गंतव्य के चुनाव का निर्णय मुख्य रूप से किसी नियोक्ता से पुरानी पहचान अथवा रिश्तेदारों के माध्यम से लिया जाता है। बेहतर वेतन और नौकरी के अवसर प्राप्त करने के लिए प्रवासी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते रहते हैं। हालांकि लोग गांव से पलायन कर रहे हैं, लेकिन (इसमें) किसी भी रिक्रूटमेंट एजेंसी या ठेकेदार की भूमिका नहीं देखी गई। प्रवासी मज़दूर कार्यस्थल पर सुरक्षा की समस्या का भी सामना करते हैं। चोट लगने या मृत्यु होने तक की कई घटनाओं के उदाहरण हैं। दुर्घटना की स्थिति में मुआवज़े के अभाव में संबंधित प्रवासी को स्वास्थ्य के साथ-साथ आमदनी का भी नुकसान उठाना पड़ता है। एक कमाऊ सदस्य के कम हो जाने से पीड़ित का परिवार बेहद कष्ट उठाता है। इसके ऊपर, चिकित्सा और उपचार का खर्च का बोझ भी परिवार पर पड़ता है।

4.4 जन-समाधान (लोगों के सुझाव)

बगापटिया पुनर्वास कॉलोनी और प्रवास के गंतव्य स्थलों पर अपने जीवन को बेहतर बनाने के लिए विभिन्न समुदायों के लोग निम्नलिखित समर्थन की आकांक्षा रखते हैं:

लोगों ने आजीविका के लिए पलायन को पूरी तरह से रोकने के लिए वैकल्पिक आय के अवसर पैदा करने की मांग मुखर की। उन्होंने मछलीपालन, पशुपालन (गाय और भैंस), खुदरा दुकानें, और कुटीर उद्योग आदि आजीविका के विकल्प चुने।

विस्थापित समुदायों हेतु कृषि और मछलीपालन के लिए भूमि का निर्धारण प्रवासियों को वापस लौटने और आजीविका के लिए फिर कभी न पलायन करने का आत्मविश्वास देगा।

खेत से हटकर और गैर-कृषि गतिविधियों के विकास के माध्यम से दीर्घकालिक आजीविका संवर्धन इन समुदायों के लिए फायदेमंद होगा। क्षेत्र की महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु स्वयं सहायता समूहों की स्थापना के लिए राज्य सरकार के मिशन शक्ति कार्यक्रम के माध्यम से मदद की जा सकती है।

दलदली भूमि और मिट्टी पर निर्मित बगापटिया कॉलोनी में भीतरी सड़कों का निर्माण और निचले इलाकों को रहने योग्य बनाने के लिए मिट्टी भरने हेतु सरकारी सहायता आदि ग्रामीणों की मांगें थीं।

हालांकि प्रवासी नौकरी खोजने के लिए रिश्तेदारी और पिछले संपर्कों का उपयोग करते हैं, एक पंजीकृत रिक्रूटमेंट एजेंसी फायदेमंद होगी। सरकारी मान्यता प्राप्त और अनुशंसित एजेंसी या एजेंट काम खोजने वालों के लिए अधिक भरोसेमंद होगी और काम का चयन, स्थान, पारिश्रमिक, काम पर सुरक्षा, गुणवत्तायुक्त भोजन और प्रवासियों के आवास आदि मुद्दों से निपटने में सहायक होगी।

प्रवासी श्रमिकों तक आवश्यक सेवाओं की पहुंच बढ़ाने के लिए सामाजिक सुरक्षा लाभों की पोर्टेबिलिटी एक उपयोगी माध्यम है।

प्रवासी कामगारों को मिलने वाले लाभ और अधिकार गंतव्य स्थान पर भी जारी रहनी चाहिए जिससे वह गुणवत्तापूर्ण सेवाओं का लाभ ले सकें।[15]

युवाओं के लिए कौशल-निर्माण प्रशिक्षण, नौकरी, सुरक्षित और नियोजित प्रवास आदि अन्य राज्यों में काम के लिए पलायन करते समय लोगों की अरक्षितता को कम कर सकते हैं।

ओडिशा और आंध्र प्रदेश सरकारों के राज्य श्रम विभाग अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) की सहायता से श्रम और रोजगार मंत्रालय (MoLE) के साथ एक समझौते पर पहुंचे हैं। इस आपसी सहयोग की रुपरेखा है समयबद्ध और परिणामोन्मुखी प्रयासों से आंध्र प्रदेश में ईंट की भट्टियों में काम करने वाले प्रवासी कामगारों को लाभान्वित करना। इस समझौते से ओडिशा के श्रम आयुक्त के अंतर्गत प्रवासी कामगारों के लिए राज्य स्तरीय समन्वय प्रकोष्ठ के गठन का मार्ग खुला है। साथ ही संकटकालीन परिस्थिति में मौसमी प्रवास करने वालों ट्रक करने के लिए जिलास्तरीय फैसिलिटेशन सेल बनाए गए हैं।[16]

हालांकि इस तरह की व्यवस्था प्रवासी श्रमिकों की दुर्दशा से निपटने में अभी तक सफल नहीं हुई है, लेकिन यह अंतर-राज्यीय प्रवासी श्रमिकों के मुद्दों को सुलझाने के लिए एक मंच के रूप में काम कर सकती है।[17] ओडिशा सरकार को अन्य राज्य सरकारों के साथ भी ऐसे समझौते करने और उनके मानदंडों को जमीन पर लागू करने की आवश्यकता है।

बुनियादी सहायता प्रणाली के विफल हो जाने पर जिन्हें मजबूरन घर-बार छोड़ना पड़ता है उनके प्रति रवैये में फर्क आना चाहिए। स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों को यह बताने की आवश्यकता है कि जलवायु-प्रेरित प्रवास हताशा के कारण होता है, और प्रवासियों की चिंताओं का निवारण सर्वोच्च प्राथमिकता होनी चाहिए। सभी प्रकार की जलवायु नीतियों में मानवता और लोगों के प्रति परवाह की झलक होने चाहिए। **जलवायु परिवर्तन के कारण होने वाले पलायन से लोग चिंतित हैं और अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों को इस मुद्दे पर तत्काल कदम उठाने चाहिए।**

4.5 सन्दर्भ

1 Nayak, Bibhu Prasad; Maharjan, KeshavLal; "Climate Change, Local Environmental Changes and Rural Livelihood Systems: A case study of three coastal villages in Journal Of International Development and Cooperation, Vol.19, No.4, 2013, pp:69-87
2 Odisha State Action Plan on Climate Change (Phase-II), June 2018
3 http://www.cansouthasia.net/wp-content/uploads/Odisha-SAPCC-Review.pdf
4 https://www.indiawaterportal.org/articles/mangrove-nurseries-protect-coasts-and-livelihoods
5 https://www.osdma.org/publication/flood-hazard-zonation-atlas-odisha/
6 https://www.thehindu.com/news/national/other-states/odisha-comes-up-with-a-flood-atlas-aided-by-satellite-imagery/article28111800.ece
7 Odisha State Action Plan on Climate Change (Phase-II), June 2018
8 Socio-economic Impacts of Climate Change in Odisha: Issues, Challenges, and Policy Options, P.K. Mishra, Journal of Climate Change, Vol. 3, No. 1 (2017), pp. 93–107.
9 Uma Daniel, Analytical Review of Market, State and Civil Society Response to Seasonal Migration from Odisha
10 Migration Trends from Coastal and Western Odisha Study of Migration Incidence and Issues: Centre for Migration and Labor Solutions (July 2014)
11 https://www.news18.com/news/india/sinking-ship-how-cyclones-sea-erosion-changed-the-fortune-of-coastal-villages-in-odisha2234213-2234213.html
12 https://www.news18.com/news/india/sinking-ship-how-cyclones-sea-erosion-changed-the-fortune-of-coastal-villages-in-odisha2234213-2234213.html
13 https://www.epw.in/journal/2016/19/notes/surviving-brink.html
14 https://www.dailypioneer.com/2015/state-editions/satabhaya-village-relocation-to-be-placed-in-sbwl-meet.html
15 https://www.orissapost.com/satabhaya-victims-still-await-justice-in-colony/
16 https://labdirodisha.gov.in/?q=node/87
17 https://odishatv.in/odisha/no-end-to-plight-of-migrant-workers-from-odisha-358303

5 अल्मोड़ा, उत्तराखंड – हिमालय के वीरान गांव

चित्र 12: उत्तराखंड में अल्मोड़ा ज़िले की लोकेशन मानचित्र

हिमालयी राज्य उत्तराखंड पर कई तरह के खतरे आसन्न हैं। पारिस्थितिक और भौगोलिक रूप से संवेदनशील इस राज्य में आपदाओं की संख्या बढ़ रही है और वह बार-बार हो रही हैं। भू-जलवायु, पर्यावरण और सामाजिक-आर्थिक हालात को देखते हुये यह राज्य काफी संकटग्रस्त है। इस अध्याय में हमने शोध के लिये इसके अल्मोड़ा जिले को चुना है।[1]

अल्मोड़ा ज़िले के भीतर अलग-अलग जगहों की ऊंचाइयों में काफी अंतर है और इसलिए जलवायु में भी फर्क है। यहां का औसत सालाना अधिकतम तापमान 23°C डिग्री है और वार्षिक न्यूनतम औसत 10°C है। जाड़ों में इस जिले के कई हिस्से बर्फ से ढक जाते हैं। (स्रोत – VPKAS, अल्मोड़ा) सालाना औसत बरसात 1000 मिलीमीटर से कुछ अधिक है। क्लाइमेट कुछ ऐसा है कि साल भर मौसम में बदलाव होता ही रहता है और मानसून में वर्षा असर डालती है।

5.1 अल्मोड़ा जिले का जलवायु परिवर्तन परिदृश्य

पिछले 100 साल का वर्षा और तापमान के आंकड़ों का विश्लेषण बताता है कि इस क्षेत्र में बरसात का ग्राफ गिरा है। वैसे 1970 के बाद बदलाव का ग्राफ तेज़ हुआ है। भले ही बरसात में कुल कमी की सालाना दर बहुत कम है फिर भी यह जल संसाधनों पर भारी दबाव डाल रही है। शोध बताता है कि पिथौरागढ़, बागेश्वर, अल्मोड़ा, नैनीताल और चम्पावत जिलों में यह समस्या सबसे अधिक है।[2]

बहुत सारे अध्ययनों से पता चला है कि इस क्षेत्र में तापमान बढ़ रहा है और बारिश कम हो रही है। जियोलॉजी और जियोसाइंस के एक जर्नल में छपे लेख में 1911-2012 के बीच उत्तराखंड में बरसात और तापमान का विश्लेषण किया गया है। यह स्टडी कहती है, "इस क्षेत्र में तापमान के आंकड़े एक स्पष्ट वॉर्मिंग ट्रेंड दर्शाते हैं। पिछले एक दशक में यह ट्रेन्ड मजबूत हुआ है। यद्यपि पूरे इलाके में तापमान में बढ़ोतरी दिखी है लेकिन पहाड़ी जिले उत्तरकाशी, चमोली, रुद्रप्रयाग और पिथौरागढ़ सबसे अधिक गर्म रहे हैं।"[3]

भारत के मौसम विभाग ने राज्य में 1951-2010 के बीच वर्षा के माहवार आंकड़ों का विश्लेषण किया और यह निष्कर्ष निकाला कि पिछले कुछ सालों में जनवरी, मार्च, जुलाई, अगस्त, अक्टूबर और दिसंबर में बरसात कम हुई है।[4]

उत्तराखंड की अर्थव्यवस्था बहुत हद तक बरसात पर निर्भर है। नौकरी के साथ खेती और पशुपालन प्रमुख व्यवसाय है।[5] पहाड़ी क्षेत्रों में भी प्रमुख आर्थिक गतिविधि कृषि ही है जहां 60% लोग किसान हैं और 5% खेतीहर मजदूर हैं।[6] पहाड़ी क्षेत्र बहुत हद तक मानसूनी बारिश पर निर्भर हैं। बरसात के पैटर्न में कोई भी बदलाव यहां जलीय चक्र और खाद्य सुरक्षा के लिये खतरा है।[7]

पहाड़ी लोग पशुपालन और कृषि पर निर्भर हैं। कम बारिश और बर्फबारी का मिश्रित असर यह होता है कि भूजल रिचार्ज नहीं हो पाता। पानी के प्रमुख स्रोत जैसे जलधाराएं, प्राकृतिक सोते और कुएं सूख रहे हैं। पानी की यह कमी पहाड़ में रहने वालों की जीविका पर असर डालती है क्योंकि पशुपालन और सिंचाई दोनों के लिए पानी चाहिये।

इसके अतिरिक्त बरसात और बर्फबारी में कमी से वह नदियां खत्म होने को हैं जो पर्वतीय वनों में मौजूद जलस्रोतों से निकलती हैं। उत्तराखंड के अल्मोड़ा जिले में गगास नदी एक ऐसा उदाहरण है जो सूख रही है। यह नदी राज्य के तीन विकासखण्डों (ब्लॉक) में फैले करीब 70 गांवों की पेयजल और सिंचाई ज़रूरतों को पूरा करती है और इस पर एक लाख लोग निर्भर हैं।

उत्तराखंड राज्य के क्लाइमेट एक्शन प्लान के मुताबिक, "बारिश के ग्राफ में जलवायु परिवर्तन से प्रेरित बदलावों ने कृषि उत्पादकता में अनिश्चितता बढ़ा दी है और बार-बार फसल बर्बाद होने से लोगों की रुचि खेती में खत्म हो रही है। श्रम आधारित पहाड़ी खेती करना मुमकिन नहीं रहा और क्षेत्र में खाद्य असुरक्षा का संकट बढ़ रहा है। इस असर है कि कभी खेती से समृद्ध बड़े-बड़े भूभाग अब बंजर दिखाई देते हैं। इस प्रकार जलवायु परिवर्तन का असर पर्वतीय कृषि, विविधता और जनहित पर पड़ रहा है।"[8]

5.2 अल्मोड़ा जिले का पलायन परिदृश्य

साल 2017 में हैदराबाद स्थित नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ रूरल डेवलपमेंट एंड पंचायती राज की रिपोर्ट में बताया गया कि उत्तराखंड के पर्वतीय हिस्सों से सामूहिक पलायन की वजह से वहां कई 'भुतहा गांव' बन गये हैं जहां सिर्फ बंजर उजाड़ ज़मीन और खाली पड़े घर बचे हैं जो इस बात का संकेत हैं कि कभी यहां लोग रहा करते थे।[9]

हालांकि सरकारी नौकरियों के अतिरिक्त किसी तरह के रोज़गार की संभावना न होने के साथ स्वास्थ्य और शिक्षा सुविधाओं की कमी लोगों के उत्तराखंड के इन पहाड़ी इलाकों से पलायन की प्रमुख वजह है लेकिन यह भी स्वीकृत तथ्य है कि जलवायु परिवर्तन और मौसमी कारणों से खेती न हो पाने से पलायन की रफ्तार बढ़ी है।

उत्तराखंड में कुल 13 जिले हैं। इनमें से 10 पहाड़ी ज़िले कहे जाते हैं। पिछले कुछ दशकों में पहाड़ी ज़िलों से हुआ तीव्र पलायन राज्य की सबसे बड़ी समस्याओं में एक है। साल 2018 में ग्रामीण विकास और पलायन आयोग की रिपोर्ट के मुताबिक 70% पलायन राज्य के भीतर ही हुआ है -- पहाड़ी क्षेत्रों से मैदानी इलाकों में।[10]

पहाड़ी क्षेत्रों की तुलना में मैदानी इलाकों की मिट्टी की उर्वरता और कृषि के विकास में भारी अंतर है। इसके अतिरिक्त, मैदानी इलाकों में बेहतर औद्योगिक, संचार और अन्य सुविधाएं हैं जिससे वहां घनी आबादी बनी रह सकती है। इसलिए, यह समझा जा सकता है कि लोग ऐसी जगह क्यों छोड़ देते हैं जहां उचित और बुनियादी सेवाओं की कमी है, और जहां कृषि पर गुज़ारा करना मुश्किल है।[11]

राज्य में 7,000 ग्राम पंचायतें हैं जिनमें 15,000 से अधिक गांव शामिल हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार इनमें से 1,048 गांवों को उनके उनके निवासियों ने खाली कर दिया गया था।[12] ग्राम्य विकास एवं पलायन आयोग ने बताया कि 2011 से 2017 के

उत्तराखंड के गैरगांव में बंद दरवाजों वाले परित्यक्त घरों की कतारें। फोटो: हृदयेश जोशी

बीच अतिरिक्त 734 गांव पूरी तरह खाली हो गए थे। आयोग ने यह भी बताया कि 2011 के बाद 565 अन्य गांवों की आबादी में 50% से अधिक की गिरावट आई है। अकेले पौड़ी जिले में ही 2011 के बाद 298 में से 186 गांव खाली हो गए थे।[13]

5.3 पलायन के प्रभाव: पहाड़ी जिलों से लोगों की आवाज़

यह केस स्टडी पलायन से प्रभावित कुछ पहाड़ी जिलों में स्थित गांवों जैसे भिकियासैंण, गैरगाओं, पंतगांव, नूना, घस्यारी, तितालीखेत, रावलसेरा, बसूलिसेरा, थमन, डोतलगाव, गूधोली और नाग[14] आदि के लोगों से बातचीत के आधार पर तैयार की गई है। इसमें जलवायु परिवर्तन से पड़ने वाले प्रभावों पर विशेष ध्यान दिया गया है। यह बताना आवश्यक है कि यह साक्षात्कार कोविड-19 महामारी से पहले किए गए थे, जिसके बाद कई प्रवासी अपने गांवों में लौट आए हैं।

उत्तराखंड में अल्मोड़ा जिले के प्रशासनिक ब्लॉक भिकियासैंण में 50% या उससे अधिक लोग आजीविका और बेहतर जीवन स्तर की तलाश में पलायन कर गए हैं। भिकियासैंण से करीब 70 किलोमीटर दूर द्वाराहाट प्रखंड के गांवों की भी कुछ ऐसी ही कहानी है।

पर्यावरण और सामाजिक कार्यकर्ता चारु तिवारी बताते हैं कि कैसे गंगा जैसी हिमालयी वन नदियां सूख रही हैं। वह दोसड़का गढेरा नामक एक स्थानीय वाटर चैनल के बारे में बात करते हैं जो द्वाराहाट प्रखंड के बग्वालीपोखर गांव में स्थित है। यह वाटर चैनल अब पूरी तरह सूख चुका है। वह कहते हैं, "*करीब 20 साल पहले एक समय था जब इस दोसाझ का गधेरा में इतना पानी हुआ करता था कि हम इसे पार नहीं कर सकते थे। एक दशक पहले तक भी इसमें पूरे साल अच्छी मात्रा में पानी होता था। लेकिन अब इस चैनल में मानसून के दौरान केवल कुछ दिनों के लिए ही पानी होता है।*"

इस तरह के वाटर चैनल वन नदियों के पोषक हैं, और उनके अंत का प्रभाव विशाल और स्पष्ट है। क्षेत्र के अधिकांश खेत अब पानी की कमी से जूझ रहे हैं। गगास के अलावा उत्तराखंड में रामगंगा (पश्चिम), बिनो, कोसी, गोमती, गरुड़गंगा और गौला जैसी कई अन्य वसंत ऋतु की नदियां भी सूख रही हैं, जिससे अपनी आजीविका और पालन-पोषण के लिए इन नदियों पर निर्भर रहने वाले लोगों के लिए कृषि को और कठिन बना दिया है।

72 वर्षीय प्रेम सिंह, जो द्वाराहाट प्रखंड के डोटलगांव के निवासी हैं, कहते हैं, "*मेरे गांव के कई लोग बाहर चले गए,*

रावलसेरा गांव की 45 वर्षीया मंजू भंडारी बिना जुते खेत दिखाती हैं जिनके मालिक मैदानी इलाकों में पलायन कर गए हैं। "कई परिवार अब बाहर जा चुके हैं। हम में से बहुत कम लोग यहां रह गए हैं। हम इस भूमि की घास का उपयोग अपने पशुओं के चारे के रूप में करते हैं। बदलते मौसम (जलवायु) ने मुश्किलें बढ़ा दी हैं।" (फोटो: हृदयेश जोशी)

***उनमें मैं भी शामिल हूं। हमें वहां पीने का पानी तक नहीं मिलता।"* प्रेम सिंह अपने मूल गांव से 2 किमी दूर बग्वालीपोखर में विस्थापित हुए हैं।**

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव ने पर्वतीय क्षेत्रों से कीमती कृषि संपदा को समाप्त कर दिया है।

***"एक दशक पहले तक भिकियासैंण शहर में एक दैनिक बाजार लगता था, जहां आसपास के गांवों के लोग आते थे और हर दिन रु. 50-60 लाख ($70,000-80,000) की मिर्च बेचते थे। लेकिन अब वह बाजार समाप्त हो गया है। फसल उगाना मुश्किल हो गया है और लोग मैदानी इलाकों में पलायन कर गए हैं,"* भिकियासैंण के एक दुकानदार ललित करकेती कहते हैं।**

द्वाराहाट प्रखंड के ही नूना गांव के मुखिया 76 वर्षीय रामदत्त कहते हैं, "*हम प्रचुर मात्रा में गेहूं, धान, काला चना, सोयाबीन, जौ और मिर्च उगाते थे। हम सब्जियां और मोटे अनाज भी उगाते थे। लेकिन बदलते मौसम ने यह सब बहुत कठिन कर दिया है। अब वर्षा समय पर नहीं होती। सिंचाई की समस्या पहले भी थी। लेकिन मानसून में इतनी वर्षा होती थी कि हम साल भर फसल उगा सकते थे।*"

पलायन का महिलाओं पर प्रभाव

पहाड़ी क्षेत्रों से मैदानी इलाकों या और दूर तक बढ़ते पलायन के साथ जो महिलाएं गांव में रह गईं उन्हें पुरुषों के काम भी करने पड़ते हैं। यह उनके घर के काम और अन्य घरेलू कर्तव्यों के अलावा एक अतिरिक्त बोझ है। महिलाएं खेती करती हैं या फिर मनरेगा (महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम) के तहत काम करती हैं, जिसके अंतर्गत सौ दिनों तक रोज़गार मिलता है जिसमें सरकार द्वारा वित्तपोषित पंजीकृत, स्थानीय सामुदायिक कार्य करने होते हैं।[15]

उत्तराखंड के विजन 2030 दस्तावेज़ के अनुसार, घर के काम और अन्य घरेलू कर्तव्यों के ऊपर खेती के कार्य के कारण महिलाओं पर प्रतिदिन 12 से 14 घंटे का अतिरिक्त बोझ पड़ता है।[16]

मकानों के अगल-बगल झाड़ियां और जंगल उग आए हैं क्योंकि 50-60 प्रतिशत से अधिक लोगों ने घर छोड़ दिया है। यह तस्वीर अल्मोड़ा के भिकियासैंण प्रखंड के एक गांव की है। (फोटो: हृदयेश जोशी)

महिला प्रधान परिवारों में वृद्धि के साथ कुछ क्षेत्रों में 'कृषि के महिलाकरण' की प्रवृत्ति बढ़ी है; ऐसा उत्तराखंड के जलवायु परिवर्तन को लेकर बने स्टेट एक्शन प्लान में भी कहा गया है जो क्षेत्र के पहाड़ी समुदायों से बातचीत पर आधारित था।[17]

अल्मोड़ा जिले के पंत गांव में 60 वर्षीया पुष्पा देवी अपने घर पर अकेले रहती हैं।

उनके दोनों बेटे रोजगार की तलाश में भारत की राजधानी दिल्ली चले गए। पुष्पा के पति की मृत्यु तभी हो गई थी जब उनके बच्चे छोटे थे। उन्होंने परिवार का पालन-पोषण किया, और भूमि ने उन्हें इतनी फसल मिल जाती थी जो घर के लोगों के भोजन के अलावा बेचने के लिए भी पर्याप्त थी। लेकिन पिछले दो दशकों में स्थिति पूरी तरह बदल गई है।

"पिछले कुछ वर्षों में कृषि बुरी तरह विफल रही है। मेरे बेटे रोजगार के लिए बाहर चले गए। यहां कई समस्याएं हैं और खेती करना आसान नहीं है। सबसे बड़ी समस्या है पानी की कमी। पहले यहां पर्याप्त बारिश होती थी, लेकिन अब बेहद कम बारिश होती हो," पुष्पा देवी कहती हैं।

पुष्पा के बड़े बेटे नरेंद्र सिंह, 38, दिल्ली से सटे नोएडा शहर में एक कपड़ा बनाने के कारखाने में काम करते हैं। वह प्रति माह केवल रु. 25,000 ($ 350 से कम) कमाते हैं। मेट्रो सिटी के बड़े खर्चों ने उन्हें आर्थिक रूप से विवश कर रखा है।

"मैं बड़ी मुश्किल से कुछ बचा पाता हूं। मेरी सारी कमाई मकान का किराया देने और दूसरे खर्चों में चली जाती है। मैं अब भी घर वापस जाना चाहता हूं, लेकिन वहां रोजगार का कोई साधन नहीं बचा है," नरेंद्र कहते हैं।

नरेंद्र ने कुछ साल पहले अपने गांव लौटने के बारे में सोचा था। लेकिन उनका कहना है कि गांव में आय का एक ही साधन है खेती, जो कि अब संभव नहीं है।

"जब मैं छोटा था, मैं अपने चाचा और भाई के साथ अपने गांव में खेत जोतता था। यह बहुत उपजाऊ भूमि थी, लेकिन अब यह संभव नहीं है। पहाड़ियों में अब बारिश या बर्फबारी बहुत कम हो गई है।"

यह पूछे जाने पर कि क्या रोज़गार मिले तो वह अपने गांव वापस जाएंगे, नरेंद्र कहते हैं, *"हां, क्यों नहीं। इस भीड़ भरे शहर में प्रदूषण और बदहाली के बीच कौन रहना चाहेगा? लेकिन मेरे पास विकल्प नहीं है। क्योंकि गांव में रोज़गार का एकमात्र साधन (खेती) संभव नहीं है।"*

5.4 जन-समाधान (लोगों के सुझाव)

साक्षात्कार में शामिल सभी लोग इस बात से सहमत थे कि हालांकि कृषि की विफलता ने उन्हें उनके घरों से दूर करने में भूमिका निभाई है, लेकिन अच्छे सरकारी स्कूल, गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सुविधाएं और रोजगार के अवसर प्रदान करने में सरकार की विफलता ने युवा पीढ़ी को रोजगार की तलाश में पलायन करने और मैदानी इलाकों में बसने के लिए प्रेरित किया है, जहां उनके परिवारों के लिए बेहतर शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएं हैं।

साथ ही , भूमि चकबंदी -- एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया[18] जिसके तहत प्रत्येक मालिक को एक ही जगह जुड़ा भूमिखंड प्रदान करने के लिए खंडित खेतों का पुन: समायोजन और पुनर्व्यवस्थापन किया जा सकता है -- के अभाव में पहाड़ी लोगों के लिए चुनौतीपूर्ण ढलानों में बिखरे हुए खेतों पर कृषि और उनकी देखभाल करना कठिन है, खासकर तब जब जंगली जानवर फसलों को बर्बाद कर रहे हों।

बातचीत के दौरान लोगों ने पलायन कम करने के लिए कई उपाय सुझाए। भूमि सुधारों की तत्काल आवश्यकता से शुरू करते हुए चकबंदी, पुनर्वितरण और पुनर्विकास जिससे ख़राब हो चुकी भूमि का कुशल उपयोग और पारिस्थितकी की बहाली सुनिश्चित हो सके।

***"(भूमि) पूलिंग और चकबंदी से बहुत मदद मिलेगी क्योंकि बिखरे हुए खेतों की देखभाल करना मुश्किल है। सवाल यह है कि ऐसा कैसे होगा? भूमि चकबन्दी महत्वपूर्ण है, लेकिन लोग बदले में अच्छी जमीन नहीं देना चाहते। उन्हें जमीन पर क़ब्ज़े का भी डर है। यहां तक कि करीबी रिश्तेदार भी दूसरों को खेती करने की अनुमति नहीं देते हैं,"* बग्वालीपोखर के दीपक मेहता कहते हैं।**

कई प्रवासी अपनी कृषि योग्य भूमि छोड़ देते हैं। इस खेती योग्य भूमि के पट्टे के कार्यवाहक प्रबंधक की भूमिका निभाते हुए सरकार एक 'भूमि बैंक' बना सकती है जो ज़मीन के मालिक और किराएदार के बीच एक अस्थायी समझौते कराए। यह निर्धारित समय समाप्त होने पर मालिक को उसकी जमीन की वापसी की गारंटी देगा। यह मॉडल उन लोगों को आश्वस्त कर सकता है जो पलायन कर गए हैं और भूमि पर कब्जे के डर से अपने पड़ोसियों को, जो अभी भी वहां रहते हैं, उस पर खेती करने की अनुमति नहीं देते हैं।

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) जैसी समाज कल्याण योजनाओं के तहत आवंटित धन का उपयोग उन लोगों की मदद के लिए किया जा सकता है/किया जाना चाहिए जो अपनी बंजर भूमि को पुनर्जीवित करना चाहते हैं और इसे खेती योग्य बनाना चाहते हैं। इससे मालिक की लागत बच जाएगी, और अन्य लोगों को भी प्रोत्साहन मिलेगा।

जल और वन का संरक्षण महत्वपूर्ण हैं। स्वस्थ वनों को उगाने और जंगलों में तालाब और ट्रेंच बनाने के लिए सामुदायिक प्रयासों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इससे जल स्तर में सुधार होगा और प्राकृतिक जल स्रोतों का कायाकल्प होगा।

"गांव के लोग प्राय: कहते हैं कि यदि उन्हें एक ही स्थान पर पर्याप्त भूमि और सिंचाई की उचित सुविधाएं मिल जाएं तो कृषि आसान हो जाएगी जिसमें कम मेहनत लगेगी। सरकार को नीति बनानी चाहिए जिससे ग्रामीणों को ऐसी भूमि उपलब्ध हो सके जो इस समय प्रयोग में नहीं है। 'प्रयोग में नहीं है' से मेरा तात्पर्य है वह भूमि जिसका स्वामित्व पलायन कर चुके लोगों के पास है और जिसपर खेती नहीं होती है और वह अप्रयुक्त भूमि जो सरकारी वन विभाग के पास है। ऐसे खेत सरकार के आश्वासन के साथ इच्छुक किसानों को उचित, निश्चित समय के लिए दिए जा सकते हैं," लोक चेतना मंच के अध्यक्ष जोगेंद्र बिष्ट कहते हैं।

उत्तराखंड के विभिन्न हिस्से अपने विभिन्न उत्पादों के लिए जाने जाते हैं। जैसे भिकियासैंण, प्रशासनिक ब्लॉक, मिर्च के लिए प्रसिद्ध है और रामगढ़ अपने फलों के लिए जाना जाता है। इसी तरह, मुनस्यारी, उत्तरकाशी और जोशीमठ अच्छी गुणवत्ता वाले राजमा के लिए जाने जाते हैं। इन फसलों की खेती को फिर से प्रोत्साहित करने के लिए सरकार को फसल की किस्म और गुणवत्ता के अनुसार समर्थन मूल्य का आश्वासन देना चाहिए।

सरकार को किसानों की सहायता करनी चाहिए जिससे उपर्युक्त

कृषि उत्पादों सहित अन्य फसलों की बाजार तक पहुंच आसान हो सके। उनकी खेती की लागत कम है और वे ग्राहकों के लिए आसानी से उपलब्ध हैं।

उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए, जैसे पिथौरागढ़ जिले के धारचूला का जैविक शहद जो कम शुगर कंटेंट के लिए जाना जाता है। यह ग्रामीणों को अच्छा मूल्य दे सकता है, और वह उत्पादन के पैमाने को बढ़ा सकते हैं। राज्य सरकारें प्रशिक्षण, विशेषज्ञ सलाह और सार्वजनिक बैंकों के माध्यम से आसान ऋण प्रदान करके उन्हें प्रोत्साहित करने में भूमिका निभा सकती हैं।

सहकारी समितियों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए और महिलाओं को उनमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। हिमालयी हस्तशिल्प में संरचित प्रशिक्षण उन्हें उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद बनाने में मदद कर सकता है जो बाज़ारों में बेचे जा सकते हैं।

महिलाओं पर काम के असमान बोझ को स्वीकार करने की आवश्यकता है और उसे कम करने के लिए वैकल्पिक आजीविका हेतु प्रशिक्षण और स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) के विकास द्वारा सहायता प्रदान करने वाली महिला संगठनों का निर्माण करने में मदद मिल सके।

महिलाएं जिस भूमि पर काम करती हैं उसके बारे में निर्णय लेने में उन्हें सहायता दी जानी चाहिए, जैसे कि उसपर क्या उगाना है। पुरुष सदस्यों की अनुपस्थिति में खेतों पर काम करने की ज़िम्मेदारी उठाने की स्थिति में महिलाओं को उन्हीं योजनाओं का उपयोग करने और लाभ उठाने की सुविधा होनी चाहिए जो छोटे किसानों को मिलती हैं।

पहाड़ियों में अच्छी गुणवत्ता वाली स्वास्थ्य देखभाल की जरूरत है, लेकिन पर्याप्त संख्या में अस्पताल और डॉक्टर नहीं हैं। इस कमी को पूरा करने के लिए एक व्यापक नीति की जरूरत है। डॉक्टरों और अन्य चिकित्सा कर्मचारियों को प्रोत्साहन और मान्यता प्रदान करके दूरस्थ क्षेत्रों में काम करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।

पहाड़ी क्षेत्रों के लोगों को अपने बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा की आवश्यकता है उन क्षेत्रों में उपलब्ध नहीं है। एक तरफ पहाड़ी इलाकों में निजी स्कूल खुल रहे हैं, वहीं दूसरी और सरकारी प्राइमरी स्कूलों को या तो बंद किया जा रहा है या वह बदहाल स्थिति में हैं -- प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा पर अधिक सरकारी व्यय द्वारा इसे सुधारने की आवश्यकता है। सरकार को बोर्डिंग सुविधाओं के साथ अच्छे प्राथमिक और इंटरमीडिएट स्कूल खोलने पर भी विचार करना चाहिए ताकि दूरदराज के इलाकों में रहने वाले माता-पिता अपने बच्चों को परिवहन की समस्या का सामना किए बिना इन स्कूलों में भेज सकें।

ग्रामीण युवाओं को अच्छी शिक्षा और नए, विभिन्न व्यवसायों में प्रशिक्षित होने के अन्य अवसर दिए जाने की आवश्यकता है जो उनके लिए कृषि के विकल्प बन सकें। नए क्षेत्रों में नौकरी करने के लिए उनके कौशल और क्षमताओं को विकसित करने के अलावा, कृषि या पशुपालन से परे रोजगार के अवसर पैदा करने की जरूरत है।

सालाना वर्षा में कमी के साथ अब बारिश देर से भी होती है। इसलिए, गांव के लोग रबी और खरीफ फसलों की बुवाई के समय में फेरबदल करते हैं, क्योंकि कृषि पूरी तरह से बारिश पर निर्भर है। द्वाराहाट प्रखंड के बसुलिसेरा गांव के निवासी नवीन कठैत (उम्र 35) एक पहाड़ी की चोटी से कुछ दूरी की ओर इशारा करते हैं। "आप यह खेत देख सकते हैं," वह कहते हैं। "वह बंजर दिखते हैं, लेकिन हमने अभी रबी की फसल बोई है। पहले हम इसे कम से कम 40 दिन पहले बोते थे। वर्षा के बदले हुए पैटर्न ने किसानों को बुवाई का समय बदलने के लिए मजबूर कर दिया है।"

किसानों द्वारा यह अनुकूलन जलवायु परिवर्तन से लड़ने की दिशा में एक छोटा कदम है। ग्रामीण लोग यह जानते हैं कि जंगल के विनाश ने पानी की कमी पैदा करने में बड़ी भूमिका निभाई है। इसलिए, वह नमी धारण करने वाले और भूजल की पुनः पूर्ति करने वाले पेड़ लगाकर जंगल को संरक्षित करने का काम कर रहे हैं।

अल्मोड़ा के पास थामण गांव में महिला स्वयं सेवक एक घटते जंगल को पुनर्जीवित करने के लिए एक साथ आई हैं।

उन्होंने वर्षा जल एकत्र करने के लिए गड्ढे और तालाब खोदे हैं और बांज, आंवला, तुलसी और बुरांस (रोडोडेंड्रोन) जैसी विभिन्न समृद्ध किस्मों के 1,००० से अधिक पेड़ लगाए हैं।

"हमने इस क्षेत्र में गिरते जल स्तर को देखा और यह पहल की। हमने बड़े पत्तों वाले वृक्षों के पौधे लगाए हैं। प्रगति धीमी है, लेकिन हम जानते हैं कि हम सही दिशा में आगे बढ़ रहे हैं," **ग्राम महिला स्वयंसेवी समूह महिला मंगल दल की मुखिया हेमा देवी ने कहा।**

इसी तरह, कई जगहों पर, उत्तराखंड के लोग जल संचयन द्वारा पेयजल की समस्या से लड़े हैं। उदाहरण के लिए, पिथौरागढ़ जिले के गंगोलीहाट प्रशासनिक ब्लॉक के नाग गांव में, ग्रामीणों ने पहाड़ी की चोटी पर 400,000 लीटर की क्षमता वाली एक विशाल पानी की टंकी बनाई है। इससे समुद्र तल से 1,800 मीटर की ऊंचाई पर रहने वाले दो दर्जन से अधिक परिवारों को पानी मिलता है।

कुछ प्रवासी अपने घर लौट आए हैं और उन्होंने उपलब्ध अनुकूल परिस्थितियों का फायदा उठाकर अपनी समस्याओं का व्यावसायिक समाधान किया है। उदाहरण के लिए, ४५ वर्षीय मनीष गोस्वामी राजस्थान में १७ साल से अधिक समय बिताने के बाद २००८ में अल्मोड़ा जिले के ताड़ीखेत ब्लॉक के गुधोली गांव लौटे थे। उन्होंने पास की गगास नदी के पानी का उपयोग करके एक छोटी गुल (जल चैनल) प्रणाली का इस्तेमाल किया और सब्जियां उगाना शुरू कर दिया। वह गाय के गोबर से खाद बनाते हैं, जिसकी उन्हें कोई लागत नहीं पड़ती। "मैं सब्जियां बेचकर हर महीने लगभग रु. 60-70,000 ($900-1000) कमाता हूं, और मैं इस घाटी में अपने घर में एक स्वच्छ वातावरण में रहता हूं। मैं पहले से कहीं ज्यादा खुश हूं," गोस्वामी कहते हैं।

5.5 सन्दर्भ

1 Integrating Climate Change Concerns into Disaster Management and Development Planning The Case of Almora, Uttarakhand, Insights series, Gorakhpur Environmental Action Group (GEAG)
2 Mishra, A. (2014) Changing Climate of Uttarakhand, India, Journal of Geology & Geosciences, p. 3.
3 Ibid.
4 Rathore, L.S., Attri, S.D., and Jaswal, A.K. (2013), State Level Climate Change Trends in India, India Meteorological Department, Lodi Road, New Delhi, p. 81, 91, 111, 116, 126, 136.
5 Uttarakhand Action Plan on Climate Change (2014), Government of Uttarakhand, p. 104.
6 Mamgain, R.P., and Reddy, D.N. (2017), Outmigration from Hill Region of Uttarakhand: Magnitude, Challenges and Policy Options, National Institute of Rural Development and Panchayati Raj, Hyderabad, p. 18.
7 Uttarakhand Action Plan on Climate Change (2014), Government of Uttarakhand, p. 104.
8 Ibid, p. 105.
9 Mamgain, R.P., and Reddy, D.N. (2017), Outmigration from Hill Region of Uttarakhand: Magnitude, Challenges and Policy Options, National Institute of Rural Development and Panchayati Raj, Hyderabad, p. 6, 14.
10 Rural Development and Migration Commission, Uttarakhand, PauriGarhwal (2018) Interim Report on the Status of Migration in Gram Panchayats of Uttarakhand, p. 18.
11 Uttarakhand Action Plan on Climate Change (2014), Government of Uttarakhand, p. 35, 102.
12 Institute for Human Development India (2018), Uttarakhand: Vision 2030, Department of Planning, Government of Uttarakhand, p. 183.
13 Rural Development and Migration Commission, Uttarakhand, PauriGarhwal (2018) Interim Report on the Status of Migration in Gram Panchayats of Uttarakhand, p. 53, 54, 73.
14 Interviews were conducted in the following villages: Bhikiasain, Gairgaon, Pantgaon, Nuna, Garhsyari, Titalikhet, Rawalsera, Basulisera, Thaman, Dotalgaon, Gudholi, and Nag.
15 Mamgain, R.P., and Reddy, D.N. (2017), Outmigration from Hill Region of Uttarakhand: Magnitude, Challenges and Policy Options, National Institute of Rural Development and Panchayati Raj, Hyderabad, p. 15.
16 Institute for Human Development India (2018), Uttarakhand: Vision 2030, Department of Planning, Government of Uttarakhand, p. 87.
17 Government of Uttarakhand, Uttarakhand Action Plan on Climate Change (2014), Government of Uttarakhand, p. 105, 119, 142, 210.
18 Joshi, Deep (2017), 'Government to introduce land consolidation act to check migration from hills' Hindustan Times, 17 April, Dehradun.

6 सहरसा, बिहार - बाढ़ का भय

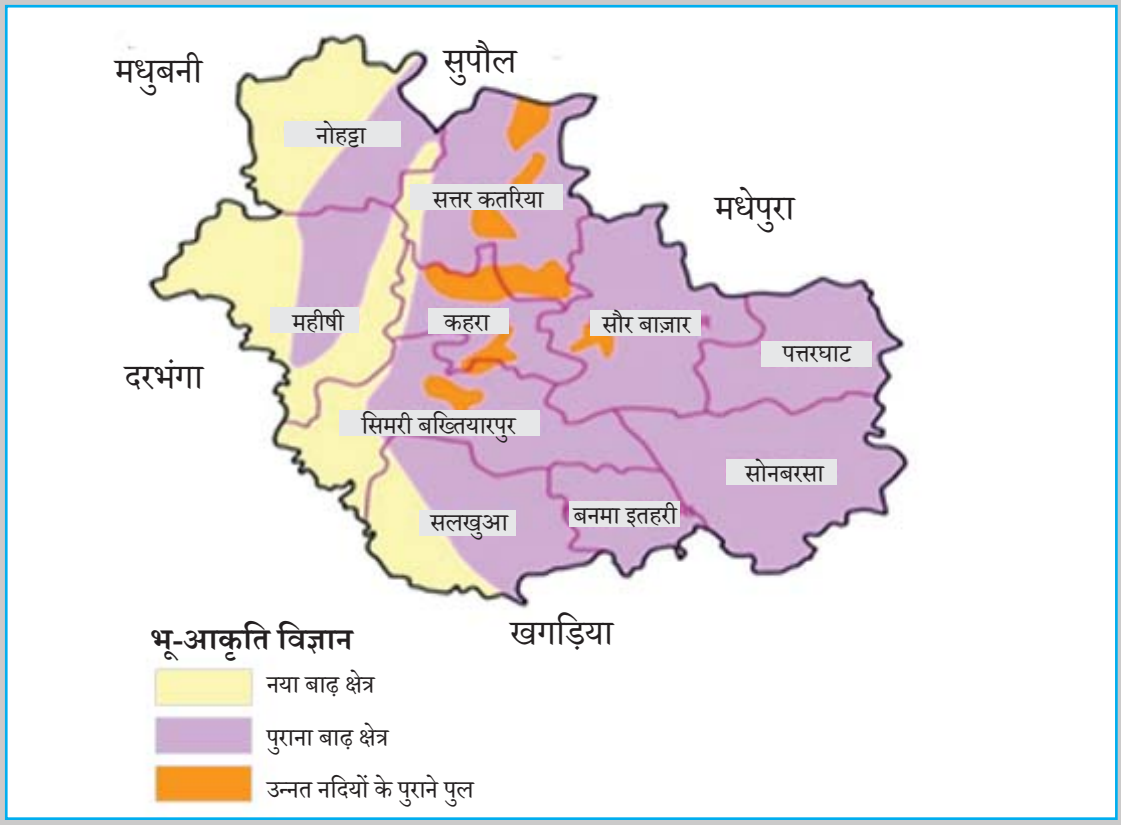

चित्र 13: सहरसा जिले का मानचित्र

सहरसा बिहार राज्य के कोसी खंड के 28 सर्वाधिक बाढ़-प्रभावित जिलों में से एक है। बिहार के 2010-11 के आर्थिक सर्वे में दिए आंकड़ों के अनुसार सहरसा सर्वाधिक पिछड़े जिलों में से एक है। मानसून के दौरान बड़े पैमाने पर बाढ़ और जलभराव, भूजल स्तर में गिरावट, और प्रदूषित तालाब व झीलें निवासियों के लिए नित नई समस्याएं खड़ी करते रहते हैं। इन कारणों से यहाँ की भूमि खेती योग्य नहीं रह गई है।

1950 के दशक में जब कोसी नदी के तटबंधों का निर्माण प्रारम्भ हुआ तब भूमि के बड़े हिस्से के जलमग्न हो जाने के कारण भारी तादाद में लोग यहां से विस्थापित हुए। विस्थापितों को अधिकतम 2 डेसिमल (1 डेसिमल = 40.5 वर्गमीटर) वासभूमि आवंटित की गई। ऐसे पुनर्वासित क्षेत्रों को 'पुनर्वास ग्राम' का नाम दिया गया। बताने की आवश्यकता नहीं है कि इस पुनर्वास में विस्थापितों की आजीविका का कोई प्रबंध नहीं किया गया। अधिकतर विस्थापित महादलित समुदायों के थे। ऐसा भी नहीं है की सभी विस्थापितों को पुनर्वास भूमि आवंटित हुई और इस से जुड़े मामले आज भी निचली अदालतों में लंबित हैं। इस वर्ग के लोगों का मज़दूरी के लिए प्रवास सर्वाधिक स्पष्ट रूप से दिखता है।[1]

6.1 सहरसा जिले का जलवायु परिवर्तन परिदृश्य

बिहार में जलवायु परिवर्तन हो रहा है जिसके कारण वर्षा का पैटर्न और तापमान बदल रहे हैं। मानसून में अकस्मात् परिवर्तनों के कारण यहां एक ही वर्ष में - कभी-कभी एक ही जिले में - बाढ़ और सूखा दोनों देखने को मिलते हैं, जिसके कारण बड़े पैमाने पर फसल नष्ट होती है और गरीबी बढ़ती है।

बिहार भारत के सर्वाधिक बाढ़-प्रभावित राज्यों में से एक है। 94.16 लाख हेक्टेयर की भौगौलिक क्षेत्र वाले इस राज्य की 68.8 लाख हेक्टेयर भूमि बाढ़-प्रवृत्त है। यही नहीं, करीब 9.41 लाख हेक्टेयर (उत्तरी बिहार में 8.32 लाख हेक्टेयर और दक्षिणी बिहार में 1.09 लाख हेक्टेयर), यानी कुल भौगोलिक क्षेत्र का दस प्रतिशत, भूमि जलप्लावित है। इसके कई कारण हैं: गादयुक्त छोटी नदियों का तटों से ऊपर बहना, जलनिकासी के मार्गों का

अतिक्रमण, तटबंधों के कारण जलभराव और भूमि की स्थलाकृति में 'सॉसर' प्रकार के झुकाव की अधिकता आदि।[2]

बिहार के 38 में से 28 जिले बाढ़-प्रवृत्त हैं, सहरसा भी उनमें से एक है। यह जिले 2004, 2007, 2008 तथा 2011 की बाढ़ से बुरी तरह प्रभावित हुए थे। उससे पहले 2002 की बाढ़ में करीब 1.65 करोड़ लोग विस्थापित हुए थे। इस आपदा में करीब 400,000 घर नष्ट हो गए और तकरीबन 400 लोगों की मृत्यु हो गई (रिलीफवेब, 2002)।

जहां एक ओर बाढ़ का पानी नदी किनारों का उल्लंघन कर गावों, खेतों, घरों को जलमग्न कर बुनियादी सुविधाओं के ध्वस्त कर देता है, वहीं यह पेयजल के स्रोतों को भी सीपेज के द्वारा प्रदूषित कर देता है। लोगों ने पाया है कि यहां पेयजल में आयरन की अधिक मात्रा के कारण उन्हें पाचन-सम्बन्धी बीमारियां हो रही हैं।

2008 में कोसी की बाढ़ ने करीब 43 लाख लोगों को प्रभावित किया था, जिनमें आठ जलमग्न जिलों से करीब 20 लाख लोगों को निकाल कर सुरक्षित स्थानों पर पहुंचाया गया था (भारत सरकार, 2008 बी)। तकरीबन 500 लोगों की मृत्यु हुई तथा 19,000 मवेशी और 223,000 घर नष्ट हुए (राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण, 2008)।

सहरसा में जलवायु परिवर्तन का प्रभाव सबसे अधिक मानसून पर देखने को मिलता है। स्थानीय निवासियों ने देखा है कि मानसून की अवधि घटने और तेजी से तापमान बढ़ने का सीधा प्रभाव फसल पर पड़ता है। गर्मी और सर्दी के मौसमों के बदलते समय के कारण सीपेज और बढ़ रहा है जिस से लगभग हर मौसम में बाढ़ का खतरा बना रहता है।

चित्र 14: जिला स्तर पर बढ़ता हुआ नवंबर का औसत न्यूनतम तापमान। 1971-2015[3]

गरम हवा (हीटवेव) मौसम-आधारित खेती के ट्रेंड को प्रभावित करती है, और जलवायु-सम्बन्धी खतरे बढ़ रहे हैं। अधिक तापमान के कारण जल के प्राकृतिक स्रोत जैसे झील, तालाब, नदियां आदि कम हो रहे हैं और भूजल स्तर तेजी से घट रहा है।

वर्ष के उत्तरार्ध में न्यूनतम (रात के समय) और अधिकतम (दिन के समय) तापमान भी कई जिलों में सामान्य से ऊपर रहता है। यह समस्या न केवल बनी रहने वाली हैं बल्कि जलवायु परिवर्तन से और विकट हो सकती हैं। अधिक तापमान और कम वर्षण से पानी की समस्या और गंभीर हो सकती है तथा भूजल के निचले स्रोतों में प्रदूषकों की सघनता बढ़ सकती है। आर्सेनिक और फ्लोराइड प्रदूषित पानी से स्वास्थ्य संबंधी गंभीर समस्या हो सकती हैं जैसे बच्चों के अंग टेढ़े हो सकते हैं।[4]

जलवायु परिवर्तन के कारण यह समस्याएं और गंभीर हो सकती हैं। रात के समय तापमान बढ़ने से शारीरिक तनाव बढ़ता है, ख़ास तौर पर मानसून के दौरान हीटवेव बच्चों के लिए बहुत हानिकारक हो सकती है क्योंकि उनमें वयस्कों की अपेक्षा अपना शारीरिक तापमान नियंत्रित करने की क्षमता कम होती है।

जलवायु के गर्म होने से डेंगू-मलेरिया जैसी बीमारियों का मौसम भी बढ़ जाता है क्योंकि तापमान बीमारी फैलाने वाले मच्छरों और जीवाणुओं के प्रजनन और लम्बे जीवनकाल के लिए उपयुक्त होता है। बिहार और उत्तर प्रदेश में इंसेफेलाइटिस और डेंगू से हर वर्ष बड़ी संख्या में बच्चे बीमार होते हैं जिनमें से कई की मृत्यु हो जाती है।[5] (अधिक तापमान और कम वर्षण से पानी की समस्या और गंभीर हो सकती है तथा भूजल के नि ले स्रोतों में प्रदूषकों की सघनता बढ़ सकती है। आर्सेनिक और फ्लोराइड प्रदूषित पानी से बच्चों में अंग टेढ़े होने जैसी अनेक सवास्थ्य संबंधी गंभीर समस्याएँ हो सकती हैं।)[6]

6.2 सहरसा का पलायन परिदृश्य

बिहार में कामकाज के लिए पलायन का लम्बा इतिहास रहा है जिसमें पिछले कुछ वर्षों में बहुत तेजी आई है। ग्रामीण बिहार में विफल होती खेतीबाड़ी और रोज़गार विकल्पों की कमी साथ ही देश के दूसरे हिस्सों में कामगारों की बढ़ती मांग के चलते राज्य का एक बड़ा तबका पालयन कर चुका है।

सहरसा, मधेपुरा, सुपौल और दरभंगा आदि की गिनती राज्य के सर्वाधिक गरीब जिलों में होती है। सहरसा जिले की 90 प्रतिशत से अधिक आबादी ग्रामीण इलाकों में रहती है (स्रोत: जनगणना 2011)। जिले में मूलभूत सुविधाओं और उद्योग की भारी कमी है। इसके साथ ही सहरसा पर हर साल बाढ़ की मार पड़ती है। निरंतर बाढ़ ने जिले की फसल पैदावार को गंभीर रूप से प्रभावित किया है।

अनियमित वर्षा के कारण लगातार घटता फसल उत्पादन, बाढ़ के पानी के सीपेज के कारण मृदा का प्रदूषण, और भूमि की उर्वरता में कमी ने स्थानीय रोज़गार के साधन लगभग समाप्त कर दिए हैं। जिसके कारण लोगों को आजीविका के लिए दिल्ली, पंजाब जैसी जगहों पर पलायन करना पड़ता है।

स्थानीय रोज़गार न होने के कारण लोगों की गिरती आर्थिक स्थिति ने 95 प्रतिशत से अधिक आबादी को काम की तलाश में पलायन करने पर मजबूर कर दिया है। न सिर्फ काम के लिए बल्कि बेहतर जीवन और बाहर काम कर रहे परिवारजनों की मदद के लिए भी लोग पलायन कर रहे हैं।

कुल 95 प्रतिशत पुरुष, जिनमें 14 साल के बच्चे तक शामिल हैं, शहरों की ओर और पलायन कर चुके हैं। इनमें से ज़्यादातर संख्या आसपास के इलाकों जैसे सहरसा और मधेपुरा के शहरी क्षेत्र, पटना, और भागलपुर जाने वालों की है। राज्य के बाहर जानेवाले अधिकांश लोग हरियाणा, पंजाब, उत्तराखंड (देहरादून, हरिद्वार, मसूरी), सूरत (गुजरात), दिल्ली, पश्चिम बंगाल (कोलकाता) और महाराष्ट्र (मुंबई) गए हैं।

पलायन करने वालों में अधिकांश कंस्ट्रक्शन सेक्टर में मज़दूर और राजमिस्त्री का काम करते हैं। दूसरी सबसे बड़ी संख्या खेतीहर मज़दूरों की है। पलायन करने के लिए स्थानीय लोग निजी एजेंटों की मदद लेते हैं और ऐसी जगहों पर जाना चाहते हैं जहां उनके इलाके के दूसरे लोग पहले ही जा चुके हैं।

CANSA की टीम द्वारा सहरसा में सहभागी अनुसंधान का आयोजन (फोटो: *CANSA)*

पलायन की प्राथमिकता के मानदंड (प्रत्येक गंतव्य पर पलायन के प्रमुख कारण का प्रतिचित्रण)

गंतव्य ↓ मानदंड →	जान-पहचान के कारण	रहने की व्यवस्था	एजेंट	रोज़गार अवसर	दैनिक संचार	अपेक्षाकृत हल्का कामकाज
मधेपुरा						
सहरसा						
बख्तियारपुर						
पटना						
हरियाणा						
पंजाब						
चंडीगढ़						
दिल्ली						
कोलकाता						
मसूरी						
देहरादून						
हरिद्वार						
राजस्थान						
सूरत						
मुंबई						

चित्र 15: प्रवास के गंतव्यों के चयन की प्राथमिकताओं के प्रमुख कारणों की विवरणिका

उपरोक्त विवरणिका में दिए मानदडों के अनुसार सहरसा के प्रवासी देहरादून को सर्वाधिक वरीयता देते हैं। उसके बाद पंजाब, हरियाणा और सूरत आते हैं। प्राथमिकता के आधार पर अन्य गंतव्यों में दिल्ली/एनसीआर, मसूरी, चंडीगढ़ और कोलकाता प्रमुख हैं। निम्नतम वरीयता पटना की है जो कम वेतन और वर्ष-भर रोज़गार की कमी रहने के कारण है।

जो लोग शारीरिक रूप से स्वस्थ हैं वह पंजाब, हरियाणा के खेतों में मज़दूरी करने जाते हैं। ज्यादातर प्रवासी देहरादून और उससे सटे इलाकों में कंट्रक्शन सेक्टर में काम करना पसंद करते हैं। पंजाब में देहरादून और आसपास के इलाकों की अधिक वेतन मिलता है।

6.3 महिषी प्रखंड, सहरसा के स्थानीय लोगों से वार्ता

नवम्बर 2019 में सहरसा के महिषी प्रखंड के कुछ गावों में एक शोध -अध्ययन किया गया। महिषी 172 वर्ग किमी में फैला है जिसमें 2011 की जनगणना के अनुसार 206,774 लोग [8] रहते हैं। इस प्रखंड में 78 गांव, 19 ग्राम पंचायतें और 40,046 घर हैं। इसके पश्चिमी किनारे से लगकर कोसी नदी बहती है।

इस शोध के अंतर्गत सिरवार पुनर्वास और नहरवार पुनर्वास गांवों के लोगों से बातचीत की गई। यह दोनों गांव कोसी तट पर बसे हैं तथा महिषी प्रखंड का हिस्सा हैं। इनमें करीब 1,600 घर हैं तथा इन गांवों में क्रमशः 600 और 400 परिवार रहते हैं। प्रशासन ने 1984 की बाढ़ के बाद लोगों को इन दोनों गाँवों में पुनर्वासित कर दिया था। आस-पास के समूचे क्षेत्र पर बाढ़ का भयंकर प्रभाव पड़ा था।

1984 की बाढ़ के पहले इन गांवों में लोग खेती करते थे क्योंकि नदी द्वारा पोषक तत्वों से युक्त गाद जमा करने से भूमि उपजाऊ थी। बाढ़ के बाद गांव के लोग छोटे पैमाने पर मज़दूरी करने लगे, लेकिन कुछ वर्षों में कोसी के तटबंधों से अत्यधिक सीपेज के कारण भूमि की उर्वरता और बीजारोपण का समय दोनों घटने लगे। साथ ही वर्षों तक स्थानीय लोग खेतों में बड़े पैमाने पर जलकुम्भी के उगने से प्रभावित थे जिसके कारण फसल की उपज और घट जाती है।

कोसी नदी, जो सहरसा जिले से होकर बहती है, अचानक अपना मार्ग बदल लेने के लिए कुप्रसिद्ध है। वर्षा ऋतु के दौरान नदी उफान पर होती है और जिले में एक बड़े क्षेत्र को जलमग्न कर देती है। बाढ़ का पानी प्राय: नदी के तट तोड़ कर गांवों में भर जाता है। कोसी के आसपास रहने वाले समुदायों ने इस जलभराव को जीवन के हिस्से के रूप में स्वीकार कर लिया है। लेकिन मानसून के समय कष्ट देने वाली बाढ़ भूमि को आवश्यक उर्वरक भी देती है जिस से साल के शेष भाग में फसल अच्छी होती है।

इस क्षेत्र के लोग मखाना और गरमा चावल उगाने के लिए जाने जाते हैं। विशेषकर भारत-नेपाल सीमा बाँध के बनने के बाद जलविभाजन का खराब प्रबंधन बाढ़ की स्थिति को और विकट बना देता है।

मौसमी बाढ़ दौरान स्थानीय निवासी आस-पास के इलाकों में चले जाते हैं और अस्थायी राहत कैम्पों में या रिश्तेदारों के यहां मानसून ख़त्म होने तक रहते हैं। दिहाड़ी मज़दूरी की खोज में यहां के निवासी राज्य के अन्य हिस्सों और दूसरी जगहों पर भी बाढ़ का पानी उतरने तक प्रवास करते हैं। इन बाढ़ों के लिए ज्यादातर भारत-नेपाल सीमा बांध के बनने के बाद जलविभाजन के प्रबंधन को उत्तरदायी ठहराया जाता है।

खेतीबाड़ी की गिरती व्यवस्था, आजीविका के विकल्पों की कमी और ऊंचे ब्याज पर लिए क़र्ज़ के बोझ का मिलाजुला प्रभाव पलायन का प्रमुख कारण है।

तापमान में बदलाव और मानसून के विस्थापन की वजह से होने वाला जलवायु परिवर्तन फसल को प्रभावित करने के कई कारणों में से एक पहचाना गया है। लेकिन यह सीपेज और जलकुम्भी के आक्रमण से खेतीयोग्य भूमि के विनाश के सामने कुछ भी नहीं है।

यह भी बताया गया है कि जो परिवार 1984 की बाढ़ के बाद भी यहाँ रह गए थे वह साल में तीन फसलें उगाते हैं और मानसून के दौरान दीर्घकालिक बाढ़ की समस्या के कारण पलायन कर जाते हैं। ऐसा करने से उनका जीवन सुचारु रूप से चल रहा है।

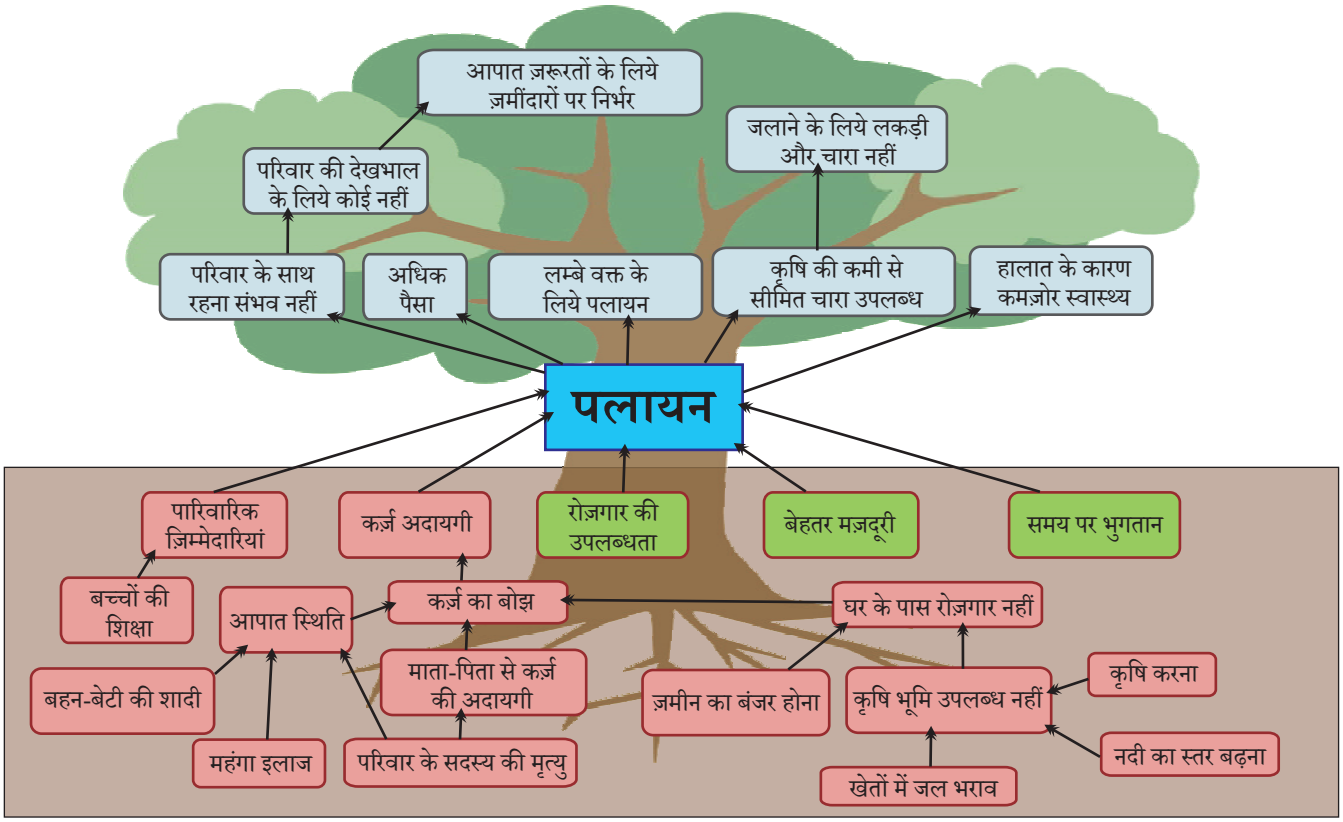

चित्र 16: सहरसा जिले का समस्या वृक्ष

6.4 जन समाधान (लोगों के सुझाव)

शोध के दौरान पलायन की संभावना कम करने के उपायों के बारे में पूछे जाने पर लोगों ने निम्न आवश्यकताएँ बताईं:

- महिलाओं के लिए खेती से इतर काम की व्यवस्था।
- शुद्ध पेयजल की उपलब्धता
- बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा का प्रबंध
- स्थानीय रोज़गार की उपलब्धता
- बच्चों की पढ़ाई के लिए उचित ब्याज़ पर आसानी से उपलब्ध शिक्षा-ऋण की व्यवस्था
- मवेशियों के लिए चारे की व्यवस्था
- सरकार द्वारा अनुमोदित और पंजीकृत कामगार अनुबंध
- लेबर कानूनों के अनुसार काम के दौरान चोट लगने या मृत्यु होने पर परिवार को उचित मुआवज़े की व्यवस्था

सहरसा में महिलाओं के साथ फोकस समूह वार्ता (फोटो: *CANSA*)

6.5 सन्दर्भ

1 Governing Flood, Migration and Conflict in North Bihar, Mithilesh Kumar, http://www.mcrg.ac.in/PP45.pdf
2 Bansil, 2011; Risk to Resilience Study Team, 2009.
3 State Action Plan on Climate Change (SAPCC)-Jan 2015-6
4 Report on Child Poverty, disasters and climate change-investigating relationships and implications over the life course of children by ODI and Chronic Poverty Advisory Network (2019)
5 Ghosh, 2010; Nandan, 2012.
6 Bagacchi, 2014; Shrivastava et al., 2015; Rajshekhar, 2017.
7 Ghosh, 2010; Nandan, 2012
8 Draft Policy Framework for Improving the Conditions of Labour Migrants from Bihar State Consultative Meeting on Labour Migration from Bihar-October 12th, 2017
9 https://www.census2011.co.in/data/subdistrict/1173-mahishi-saharsa-bihar.html

7 भारत में आपदा और विस्थापन: नीति की समीक्षा

भारत हर साल अपने सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का दो प्रतिशत प्राकृतिक आपदाओं के कारण गंवा देता है। भारत में जलवायु परिवर्तन के कारण सालाना कुल 3.75 लाख करोड़ रुपयों (80 अरब डॉलर) का घाटा होता है। यह 2009 -- जो इन अनुमानों का आधार वर्ष भी है -- के सकल घरेलू उत्पाद का 5.7 प्रतिशत है।[1] [2]

वर्षा के बदलते पैटर्न और एक गहन जलीय चक्र का अर्थ है कि बाढ़, सूखा, तूफ़ान आदि जलवायु संबंधी आपदाएं अधिक तीव्रता से और जल्दी-जल्दी आने की संभावना है। अनुमान है कि दक्षिण एशियाई मानसून और अधिक सुदृढ़ होगा जिससे पूर्वी भारत और बांग्लादेश में 2050 तक 20 प्रतिशत अधिक वर्षा होगी।[5] यह भी अनुमान है कि 2015 में जम्मू-कश्मीर, 2013 में उत्तराखंड और 2012 में असम की बाढ़ ने करीब 15 लाख लोगों को विस्थापित किया।[4]

इस रिपोर्ट में दी गई पांच केस स्टडीज उन लोगों की आवाज़ है जो जलवायु परिवर्तन के कारण विस्थापित या प्रवासी हुए। जहां एक ओर उड़ीसा के केंद्रपारा से लोगों को समुद्र के बढ़ते जलस्तर के कारण खेती योग्य भूमि गंवाने के बाद विस्थापित होना पड़ा, वहीं सुंदरबन के लोगों ने चक्रवातों और नदी के किनारों की कटाई से त्रस्त हो पलायन किया। उसी प्रकार सहरसा में बाढ़ और खेतों में पानी का अत्यधिक रिसाव, मराठवाड़ा और उत्तराखंड के पहाड़ी इलाकों में अनियमित मानसून के कारण बर्बाद होती खेती और घटता जलस्तर पलायन के मुख्य कारण हैं। निरंतर गरीबी और प्रवास रोकने के लिए सरकारी सहायता का अभाव सभी जगह के प्रवासियों की समान समस्याएं हैं।

भारत का संविधान अपने नागरिकों को कुछ मूलभूत अधिकार देता है। अनुच्छेद 14 समानता का अधिकार देता है और अनुच्छेद 19-22 आज़ादी का अधिकार देते हैं।

अनुच्छेद 19 (1) के अंतर्गत भारत की सीमाओं में कहीं भी स्वतंत्र रूप से आने-जाने, रहने-बसने, काम अथवा व्यापार करने का अधिकार सुनिश्चित है।

संविधान का अनुच्छेद 16 सरकारी नौकरियों में अवसर की समानता का अधिकार देता है। और यह सुनिश्चित करता है कि 'राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित विषयों में सभी नागरिकों को अवसर की समता' का अधिकार हो। अनुच्छेद 16 यह भी सुनिश्चित करता है कि 'राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के संबंध में केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्मस्थान, निवास या इनमें से किसी के आधार पर न तो कोई नागरिक अपात्र हो और न उससे विभेद किया जाए'।

अनुच्छेद 39 (e), जो नीति निर्देशक सिद्धांत होने के कारण प्रवर्तनीय नहीं है लेकिन राज्य की नीति और विधान का मार्गदर्शन करता है, कहता है कि 'पुरुष और स्त्री कर्मकारों के स्वास्थ्य और शक्ति का तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो और आर्थिक विवशता के कारण नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हों'।

अतः, तार्किक रूप से देखा जाए तो केंद्र और राज्य सरकारों का यह संवैधानिक कर्तव्य है कि जलवायु परिवर्तन द्वारा प्रवासित लोगों की समस्याओं का समाधान करने के लिए नीतियों में परिवर्तन करें। नीति-निर्देशक सिद्धांतों के अनुसार यह आवश्यक है कि सरकारी नीतियां यह सुनिश्चित करें कि सभी कर्मियों को काम करने का अच्छा वातावरण मिले, 14 साल तक के बच्चों के शिक्षा मिले, और सभी बच्चों को अच्छा स्वास्थ्य और पोषण मिले। यह सरकार का संवैधानिक कर्तव्य है और मूल-निवास या वर्तमान निवास के आधार पर भेदभाव किए बिना सभी प्रकार के लोगों को प्राप्त होना चाहिए। उसी प्रकार अनुच्छेद 41, 42 और 43 कामगारों को काम, शिक्षा और उचित वेतन का अधिकार भी देते हैं।

यह संवैधानिक कर्त्तव्य इस अध्ययन का आधार है जो जलवायु परिवर्तन के कारण होने वाले विस्थापन और प्रवास की समस्या से निपटने हेतु भारत की राष्ट्रीय और क्षेत्रीय नीतियों की मजबूती का आंकलन करता है।

केस स्टडीज ने यह दर्शाया है कि प्रवासियों को दो तरह की नीतियां प्रभावित करती हैं। पहला, पलायन के स्रोत स्थान पर

अनुकूलन के उपायों के अंतर्गत जलसंभर (वॉटरशेड) विकास, क्लाइमेट रेजिलिएंट खेती, फसल बीमा, ग्रामीण क्षेत्रों में जीविका के वैकल्पिक अवसर, सूखे की रोकथाम के उपाय, आदि आ सकते हैं। दूसरा, गंतव्य स्थान पर प्रवासियों के लिए सामाजिक सुरक्षा और स्वस्थ वातावरण की उपलब्धता। पहले के अभाव में लोग पलायन करने को विवश हो सकते हैं। वहीं दूसरे की प्रचुरता जहां हो वहां लोग एक अच्छे जीवन की ओर आकर्षित हो सकते हैं।

शहरी इलाकों में रहने वाले गरीबों के लिए भारत सरकार विभिन्न योजनाओं को समय-समय पर लागू करती रहती है जैसे महात्मा गांधी ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना, राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन आदि के अंतर्गत रोजगार योजनाएं, प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना-जलसंभर भाग, फसल बीमा के लिए प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना, सार्वजनिक वितरण प्रणाली, राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन, एजुकेशन फॉर आल, स्किल इंडिया, हाउसिंग फॉर आल (शहरी), राष्ट्रीय मेक इन इंडिया, शहरी आजीविका मिशन, राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन, सर्व शिक्षा अभियान, सौर ऊर्जा मिशन, आदि।

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, 2005:

मनरेगा, 2005 के अंतर्गत सभी ग्रामीण परिवारों के लिए 100 दिन का अकुशल मजदूरी कार्य सुनिश्चित किया जाता है। यह स्थायी संपत्ति बनाने में भी सहायक होता है। पिछले एक-डेढ़ दशक में समय-समय पर केंद्र और राज्य की सरकारों ने इसके लिये शर्तों और पात्रता में बदलाव किए हैं जिस से यह योजना लक्षित समूहों तक अधिक से अधिक पहुंच सके।

अश्विनी और प्रकाश (2017)[9] यह बताते हैं कि मनरेगा से गरीब परिवारों को लाभ हुआ है। हांलांकि यह योजना झारखंड में ग्रामीण इलाकों से शहरी इलाकों में पलायन रोकने में विफल रही क्योंकि इसके अंतर्गत औसत काम के दिन कम थे। जैकब (2008)[10] का निष्कर्ष है कि मनरेगा की ग्रामीण-शहरी पलायन रोकने की क्षमता उसके कार्यान्वन पर निर्भर करती है। केंद्र और राज्य दोनों सरकारों ने जलवायु परिवर्तन से होने वाला पलायन रोकने के लिए प्रोत्साहन के तौर पर मज़दूरी बढ़ा कर देने के विकल्प का प्रयोग किया है।

उदाहरण के लिए, 2016-17 में सात सूखाग्रस्त राज्यों में मनरेगा के अंतर्गत 150 दिनों का रोजगार दिया गया।[11] उसी प्रकार सितम्बर 2015 में उड़ीसा सरकार ने राज्य के सूखाग्रस्त इलाकों से पलायन रोकने के लिए मनरेगा के अंतर्गत 200 दिनों के रोजगार का अधिकार प्रदान किया।[12] पुनः, अगस्त 2019 में संकटकाल में पलायन को रोकने के लिए मनरेगा के अंतर्गत 200 दिनों का सुनिश्चित रोजगार और प्रवासी परिवारों के लिए तीन महीने का राशन प्रदान करने समेत कई अन्य उपाय किए।[13]

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना:

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना का ध्येय है 'प्रति बूंद ज्यादा फसल', इसका एक उद्देश्य है कि जिन खण्डों/जिलों में पानी नहीं है, पानी की कमी है, या भूजलस्तर कम है वहां द्रप्स सिंचाई (micro-irrigation) को बढ़ावा मिले।[14] दिशा निर्देशों के अंतर्गत 'A' श्रेणी के राज्य आते हैं जहां द्रप्स सिंचाई गहराई से पहुंची है। लेकिन इस सूची में पलायन के स्रोत राज्य जैसे बिहार, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, उड़ीसा और उत्तर प्रदेश नहीं हैं। पीएमकेएसवाई के दो हिस्से हैं: पहला - 'प्रति बूंद ज्यादा फसल' और दूसरा जलसंभर यानी वॉटरशेड। इस योजना के अंतर्गत 2015-18 के दौरान 18.6 लाख हेक्टेयर अतिरिक्त भूमि द्रप्स सिंचाई के अधीन आई है। और 83,135 जल संचयन ढांचे तैयार किए गए जो 1,59,320 हेक्टेयर क्षेत्र को सिंचित कर सकते हैं।[15]

इंडियन कॉउन्सिल फॉर फ़ूड एंड एग्रीकल्चर (ICFA) के अध्ययन में पाया गया कि द्रप्स-सिंचाई प्रणाली (micro irrigation system, MIS) अपनाने से किसानो की आय 46.8 प्रतिशत बढ़ गई। लेकिन MIS को अब भी बहुत छोटे स्तर पर अपनाया जा रहा है और इसका लागू होना ज्यादातर सरकारी सब्सिडी पर निर्भर है।

द एनर्जी एंड रिसोर्सेज इंस्टिट्यूट (टेरी) ने अगस्त 2019[16] के एक अध्ययन में पाया कि भारत में द्रप्स-सिंचाई के विकास में बाधक प्रमुख कारण निम्न हैं: लाभार्थियों के वित्तपोषण की कठिन प्रणाली; योजना के कार्यान्वन में जटिलताएं और बदलाव; और किसानों में MIS अपनाने के प्रति उत्साह की

कमी। यह अध्ययन सुझाता है कि सब्सिडी पैटर्न में बदलाव की आवश्यकता है और कुआँ खोदने के लिए मिलने वाले बैंक ऋण को पंप सेट हेतु बिजली कनेक्शन के लिए भी जोड़ा जाए जिस से छोटे और सीमांत किसान भी योजना का लाभ[16] ले सकें। पीएमकेएसवाई (पीडीएमसी) के अंतर्गत 2016-17 में 83% अनुदान आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिल नाडु, तेलंगाना, गुजरात और मध्य प्रदेश को दिया गया।

ड्रप्स-सिंचाई (माइक्रो इरिगेशन) पर एक और अध्ययन में ग्रांट थॉर्टन[17] ने पाया कि भारत में MIS से किसान की आय में औसत वृद्धि 42% है। वहीं राष्ट्रीय स्टार पर MIS की औसत पहुंच 5.5 प्रतिशत है। इसके विपरीत, मध्य प्रदेश (2.3), ओडिशा (2.3), बिहार (1.9), झारखण्ड (1.5), उत्तर प्रदेश (0.2) और उत्तराखंड में 0.1 माइक्रो-इरिगेशन के अंतर्गत है। अध्ययन का अनुमान है कि वर्तमान दर पर माइक्रो इरिगेशन की पूरी क्षमता को प्राप्त करने में 100 साल लगेंगे क्योंकि पीएमकेएसवाई के तहत उपलब्ध राशि बहुत कम है।

एमआईएस की उपलब्धता और पहुंच सुनिश्चित करने के लिए राज्य-स्तर पर एक मजबूत तंत्र की आवश्यकता है। विभिन्न अध्ययनों ने पाया है कि छोटे और सीमांत किसानों द्वारा इसके अंगीकरण को सुनिश्चित करने के लिए सब्सिडी पैटर्न और अन्य वित्तीय साधनों में संशोधन की आवश्यकता है।

गुजरात, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, और तेलंगाना जैसे राज्यों की तुलना में छत्तीसगढ़, बिहार, ओडिशा, झारखंड, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, और पश्चिम बंगाल को बहुत कम आवंटन प्राप्त हुआ है।

उदाहरण के लिए, 2019-20 में पीएमकेएसवाई-पीडीएमसी के तहत बिहार के लिए आवंटन केवल 53 करोड़ रुपए (सिक्किम के आवंटन के बराबर) है, जबकि गुजरात के लिए आवंटन 300 करोड़ रुपए है।[18] बड़े पैमाने पर प्रवसन झेलने वाले अधिकांश राज्यों -- जैसे झारखंड (45 करोड़ रुपए), उत्तराखंड (32 करोड़ रुपए), और ओडिशा (50 करोड़ रुपए) - के लिए आवंटन किसी कारणवश नगण्य है। 2016-17 में भी आवंटन ऐसे ही थे। बिहार, छत्तीसगढ़, झारखंड, ओडिशा और पश्चिम बंगाल को कम राशि प्रदान की गई।

कौशल भारत (स्किल इंडिया):

'मेक इन इंडिया' जैसे प्रमुख कार्यक्रम की सफलता सुनिश्चित करने के लिए सरकार को एक कुशल कार्यबल की आवश्यकता है। कृषि से लोगों को हटाकर उन्हें अन्य व्यवसायों के तरफ खींचना भी महत्वपूर्ण है। कौशल भारत की पहलों को विभिन्न केंद्र-प्रायोजित कार्यक्रमों के माध्यम से स्रोत और गंतव्य दोनों स्थानों पर लागू किया जाता है। रोजगार सृजन योजनाओं में प्रमुख हैं: प्रधान मंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (पीएमईजीपी) जिसका क्रियान्वन सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम मंत्रालय द्वारा किया जाता है; महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (मनरेगा); पंडित दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्य योजना (डीडीयू-जीकेवाई) जो ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा चलाई जाती है; और दीनदयाल अंत्योदय योजना - राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन (डीएवाई-एनयूएलएम) जिसका क्रियान्वन अवसान और शहरी कार्य मंत्रालय के द्वारा होता है। प्रधानमंत्री मुद्रा योजना (PMMY) के अंतर्गत बैंकों, गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों (NBFC), और माइक्रो-फाइनेंस इंस्टीट्यूशंस (MFI) द्वारा गैर-कृषि क्षेत्र में लघु/सूक्ष्म उद्यमों को कोलैटरल मुक्त ऋण दिया जाता है जिसकी सहयता से उद्यमी अपनी व्यावसायिक गतिविधियों का विस्तार कर सकें। प्रधानमंत्री मुद्रा योजना (PMMY) के अंतर्गत बैंकों, गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों (NBFC), और माइक्रो-फाइनेंस इंस्टीट्यूशंस (MFI) द्वारा गैर-कृषि क्षेत्र में लघु/सूक्ष्म उद्यमों को कोलैटरल मुक्त ऋण दिया जाता है जिसकी सहायता से उद्यमी अपनी व्यवसायिक गतिविधियों का विस्तार कर सकें। युवाओं की रोजगार क्षमता में सुधार के लिए लगभग 22 मंत्रालय/विभाग विभिन्न क्षेत्रों में कौशल विकास योजनाएं चलाते हैं।[8]

लेकिन गंतव्य पर इन कार्यक्रमों की पहुंच कथित रूप से मुश्किल है। वर्किंग ग्रुप ऑन माइग्रेशन (MoHUPA, 2017) ने सुझाव दिया है कि शहरी क्षेत्रों में प्रवासियों तक कौशल कार्यक्रमों की पहुंच बेरोकटोक होनी चाहिए। ऐसे मामलों में अधिवास (डोमिसाइल) प्रतिबंध हटाने की भी आवश्यकता है। यह अनुशंसा करता है कि भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों को यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि केंद्रीय बजटीय समर्थन

द्वारा वित्तपोषित कौशल कार्यक्रमों में अधिवास प्रतिबंध न हो। कौशल विकास और उद्यमिता (MSDE) मंत्रालय की प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (PMKVY) योजना के तहत पहले से ही सेक्टर स्किल काउंसिल (SSCs) और मौजूदा कौशल के प्रमाणन हेतु अन्य नामित एजेंसियों के लिए प्रावधान है। वर्किंग ग्रुप के सुझाव के अनुसार इस प्रकार के कार्यक्रमों को बढ़ाया जाए और सभी SSCs इस तरह के प्रमाणीकरण प्रदान करें।

केस स्टडीज़ और लोगों के साथ चर्चाएं अधिक सुदृढ़ कौशल विकास की आवश्यकता को रेखांकित करती है। महाराष्ट्र के बीड जिले में पाया गया कि अधिकांश युवा शिक्षित हैं लेकिन आजीविका के लिए उपयुक्त कौशल की अनुपस्थिति में कई बेरोजगार युवाओं को गांव के बाहर काम करने जाना पड़ता है। जब खेती का मौसम नहीं होता तो ग्रामीण, विशेष रूप से युवा, कृषि और औद्योगिक मजदूरों के रूप में अहमदनगर, काडा, तिसगांव या पुणे और मुंबई जैसे बड़े शहरों की ओर कूच करते हैं। युवाओं का मानना था कि उनके पास तकनीकी / व्यावसायिक कौशल और शिक्षा का अभाव है। इसी तरह की उम्मीदें उत्तराखंड और सुंदरवन में युवाओं में भी प्रमुखता से सामने आई।

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (एनआरएलएम)

एक अध्ययन में इस कार्यक्रम के निष्कर्षों का स्वतंत्र रूप से मूल्यांकन किया गया और पाया गया कि इसके कारण होने वाले आजीविका के विविधीकरण और रोजगार के अवसरों में वृद्धि से संकटकाल का प्रवास कुछ हद तक कम हो गया है। कार्यक्रम ने एनआरएलएम गांवों में विविध आजीविका का निर्माण किया है। आजीविका के प्राथमिक स्रोतों के रूप में एकमात्र मजदूरी और कृषि पर निर्भरता के कारण लोगों पर फसल की विफलता, सूखे और अन्य प्राकृतिक आपदाओं का संकट सदैव मंडराता रहता था।

स्वयं सहायता समूहों के नेतृत्व में किए गए प्रयासों ने सदस्यों को स्वरोजगार के अवसर और वित्तीय सहायता प्रदान की है, जिससे वे अपनी आजीविका में विविधता ला सकते हैं और कृषि और गैर-कृषि क्षेत्रों में रोजगार के अवसर पैदा कर सकते हैं। कृषि पद्धतियों के बारे में जानकारी और उनतक पहुंच, कौशल निर्माण कार्यक्रमों तक पहुंच और कृषि से संबंधित अन्य योजनाएं भी कार्यक्रम के कारण बढ़ी हैं। कार्यक्रम ने प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन को बढ़ाने में भी मदद की है, जिसके परिणाम हैं मृदा और जल संरक्षण, वनीकरण, आदि।[19]

सुंदरवन, उत्तराखंड, और ओडिशा से केस स्टडीज कृषि में महिलाओं की भागीदारी के बदलते रुझान को रेखांकित करते हैं। राष्ट्रीय आजीविका मिशनों के माध्यम से लिक्विडिटी और बाजारों तक पहुंच को सक्षम किया गया है। इन मिशनों से उन महिलाओं को परिवर्तनकारी समर्थन की आवश्यकता है जिनपर कृषि की अतिरिक्त ज़िम्मेदारी का भार है।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (पीएमएफबीवाई)

कृषि बीमा जलवायु परिवर्तन के कारण बेहद ख़राब और अनियमित मौसम के प्रभावों से निपटने के लिए किसानों को सुरक्षा प्रदान करने का एक वित्तीय साधन है। यह योजना उन किसानों तक सीमित है जो बैंकों से ऋण लेते हैं क्योंकि उन्हें फसल बीमा लेना अनिवार्य है।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (पीएमएफबीवाई) 20का उद्देश्य है कृषि क्षेत्र में स्थाई उत्पादन का समर्थन करना, निम्न माध्यमों से:

i) अप्रत्याशित घटनाओं के कारण फसल की हानि/क्षति से पीड़ित किसानों को वित्तीय सहायता प्रदान करना

ii) किसानों की आय को स्थिर करना ताकि वह खेती में बने रहें

iii) किसानों को नवीन और आधुनिक कृषि पद्धतियों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना।

iv) कृषि क्षेत्र में ऋण के प्रवाह को सुनिश्चित करना जो खाद्य सुरक्षा, फसल विविधीकरण और कृषि क्षेत्र के विकास और प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने के साथ-साथ किसानों को उत्पादन जोखिमों से बचाने में योगदान देगा।

मौसम आधारित फसल बीमा योजना (डब्ल्यूबीसीआईएस)[21] का उद्देश्य वर्षा, तापमान, हवा, आर्द्रता, आदि से संबंधित प्रतिकूल मौसम से होने वाली अनुमानित फसल हानि के कारण संभावित आर्थिक क्षति की स्थिति में बीमित किसानों की कठिनाइयों को कम करना है। डब्लूबीसीआईएस किसानों की मानित फसल हानि की क्षतिपूर्ति हेतु संभावित पैदावार का अनु-

मान लगाने के लिए मौसम के मापदंडों का आधार लेता है।

मीडिया रिपोर्ट्स के मुताबिक पीएमएफबीवाई का लाभ किसानों तक नहीं पहुंच रहा है। कार्यकर्ताओं का कहना है कि 'अस्वीकृति के मानदंड अस्पष्ट हैं और इसका निर्णय पूरी तरह से उस समिति की सनक पर निर्भर है जो यह निर्णय करती है कि मुआवज़े का दावा मानदंडों को पूरा करता है या नहीं'।[22] सरकार की प्रमुख राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना, प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (पीएमएफबीवाई), का एक विश्लेषण कहता है कि इसके पहले की ऐसी योजनाओं की तुलना में इसका कार्यान्वयन कहीं बेहतर है। यह विश्लेषण दोषपूर्ण है। ऐसा भी हो सकता है कि बुंदेलखंड और मराठवाड़ा जैसे कमजोर क्षेत्रों में किसानों को आधे से अधिक फसल के नुकसान होने पर भी कोई भुगतान न मिले।[23]

जलवायु आपदा प्रवृत्त क्षेत्रों में प्रभावी फसल बीमा ज़रूरी है। हांलांकि इन क्षेत्रों के लोगों से बात करने पर यह पता लगता है कि जलवायु परिवर्तन या अन्य कारणों से फसल का नुकसान होने पर मुआवज़े की प्रक्रिया को पूरा करने के लिए उपयुक्त तंत्र की बेहद आवश्यकता है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस):

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013 के तहत केंद्र सरकार 500,000 'राशन' की दुकानों के माध्यम से 800 मिलियन से अधिक लोगों को रु 1-3 प्रति किलोग्राम के हिसाब से सस्ते खाद्यान्न की आपूर्ति करती है। प्रत्येक परिवार को आवंटन सदस्यों की संख्या पर निर्भर करता है। यह राज्य सरकार द्वारा परिवार के मुखिया को जारी किए गए राशन कार्ड में अंकित होता है।[24] यह कार्ड डिजिटल रूप से आधार से जुड़ा होता है, जो 12-अंकों की विशिष्ट पहचान संख्या है जिसका उपयोग भारतीय नागरिकों की पहचान को प्रमाणित करने के लिए किया जाता है।

भारत विश्व का सबसे व्यापक खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम चलाता है, जिसमें हर साल 81 करोड़ से अधिक लाभार्थियों को 600 लाख टन से अधिक सब्सिडी वाला खाद्यान्न वितरित किया जाता है। यह पांच लाख से अधिक राशन या उचित मूल्य की दुकानों के विशाल नेटवर्क के माध्यम से किया जाता है।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (एनएफएसए) के तहत प्रत्येक लाभार्थी प्रति माह पांच किलो अनाज सब्सिडी पर पाने के योग्य है। इसके अंतर्गत चावल रु 3 प्रति किलो, गेहूं रु 2 प्रति किलो और मोटे अनाज रु 1 प्रति किलो के दर से दिया जाता है।[25]

केंद्रीय उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्रालय ने हाल ही में घोषणा की कि 'वन नेशन, वन राशन कार्ड' योजना 1 जुलाई, 2020 से शुरू की जाएगी।[26] इस योजना का उद्देश्य आंतरिक प्रवासी कामगारों के लिए सब्सिडी वाले खाद्यान्नों की पोर्टेबिलिटी को सुविधाजनक बनाना है, बशर्ते उनका राशन कार्ड डिजिटल हो और आधार से जुड़ा हो।

केंद्रीय उपभोक्ता मामलों के मंत्री रामविलास पासवान के अनुसार आंध्र प्रदेश, गुजरात, हरियाणा, झारखंड, कर्नाटक और केरल जैसे राज्यों में पहले से ही अंतर्राज्यीय सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) प्रचलन में है। यह राशन कार्डों के ऑनलाइन डेटाबेस, सार्वजनिक वितरण प्रणाली के एकीकृत प्रबंधन (आईएमडीएस) के तहत संभव है। कार्यक्रम के परिणामस्वरूप, इन राज्यों के लोगों के लिए पीडीएस खाद्यान्नों की सार्वभौमिक पहुंच सुलभ हो गई है।

सरकार द्वारा योजनाओं के अंतर्गत किए गए दावों से इतर, केस स्टडीज बताती हैं कि आरटीई के उद्देश्यों को प्रवासी श्रमिकों के बच्चों तक पर्याप्त रूप से पहुंचाने के लिए और अधिक प्रयास की आवश्यकता है। महाराष्ट्र से केस स्टडीज भी इसी आवश्यकता को रेखांकित करती हैं।

हाउसिंग फ़ॉर ऑल (शहरी)

इस मिशन का उद्देश्य है झुग्गीवासियों सहित शहरी गरीबों की आवासीय आवश्यकता को दूर करना, झुग्गीवासियों का पुनर्वास, क्रेडिट-लिंक्ड सब्सिडी के माध्यम से कमजोर वर्गों के लिए किफायती आवास को प्रोत्साहन, सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों की साझेदारी में किफायती आवास प्रदान करना, और लाभार्थी को घर के निर्माण के लिए सब्सिडी। इस योजना के लिए लाभार्थी परिवार के किसी भी सदस्य के नाम से देश के किसी भी हिस्से में पक्का घर (सभी मौसमों में रहने का ठिकाना) नहीं होना

चाहिए। दिशानिर्देश स्थायी निवासियों और प्रवासियों में भेद नहीं करते हैं; हालांकि, यह उन ग्रामीण क्षेत्रों के प्रवासियों को बाहर रखता है जो अस्थायी रूप से केवल आवास योजना से लाभ के लिए प्रवास कर रहे हो सकते हैं।[30]

सरकार भीड़-भाड़ वाले महानगरों में प्रवासी मजदूरों को किराए पर मकान देने की भी योजना बना रही है। इस योजना से सरकार निम्न-आय वाले सामाजिक-आर्थिक समूहों को आवास का लाभ प्रदान कर रही है, जिनके पास खुद का घर बनाने के लिए वित्त नहीं है और जिन्हें काम के लिए शहर आना-जाना पड़ता है। यह योजना आवास और शहरी मामलों के मंत्रालय और श्रम मंत्रालय का संयुक्त प्रयास है।[31]

हालांकि, मीडिया रिपोर्टों से पता चलता है कि प्रवासी परिवारों को योजना का लाभ नहीं मिल रहा है। एक अनुमान के हिसाब से अहमदाबाद में करीब 1.3 मिलियन प्रवासी 'हाउसिंग फॉर ऑल' योजना से बाहर हैं।[32]

7.10 सामाजिक सुरक्षा:

भारत सरकार ने अनौपचारिक श्रमिकों को प्रधानमंत्री श्रमयोगी मान-धन (पीएम-एसवाईएम) योजना के साथ सम्मानित करने का निर्णय लिया है। अब वह 3.13 लाख कॉमन सर्विस सेंटर्स (CSCs) पर 3,000 रुपये की सुनिश्चित मासिक पेंशन पा सकते हैं। हालांकि, अनौपचारिक श्रमिकों को राष्ट्रीय पेंशन योजना, कर्मचारी राज्य बीमा कॉर्प योजना, या कर्मचारी भविष्य निधि योजना के तहत आने वाली योजनाओं का लाभ नहीं मिल सकेगा।[33]

7.11 प्रधानमंत्री आवास योजना-ग्रामीण और विभिन्न ग्रामीण विकास योजनाएं:

पीएमएवाई-जी का उद्देश्य 2022 तक सभी आवासहीन परिवारों और कच्चे, जीर्ण-शीर्ण घरों में रहने वाले परिवारों को बुनियादी सुविधाओं के साथ पक्के मकान प्रदान करना है। लाभार्थी चयन प्रक्रिया सामाजिक-आर्थिक और जातिगत जनगणना (SECC), 2011 के आंकड़ों में दिए गए आवासहीनता के मापदंडों का उपयोग करके लाभार्थियों का चयन कर रही है, जिन्हें ग्राम सभाओं द्वारा सत्यापित किया जाएगा।[34] इस प्रकार बनाई गई स्थायी प्रतीक्षा-सूची में प्रवासी परिवारों को भी सम्मिलित किया जाता है, लेकिन प्रवासी परिवार की सूची में परिवर्तन की संभावनाएं कठिन हैं।

7.12 राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005:

राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन नीति मुख्य रूप से जलवायु आपदाओं के अल्पकालिक और अचानक होने वाली घटनाओं से संबंधित है। यह धीमी गति से होने वाले जलवायु परिवर्तन और उसके असर के लिये नहीं हैं जैसे मिट्टी और वातावरण में बढ़ती शुष्कता और बार-बार पड़ने वाला सूखा, मरुस्थलीकरण, समुद्र-स्तर में वृद्धि, हिमनदों का पिघलना और उनके कारण होने वाले नुकसान।

कोविद-19 महामारी के दौरान लॉकडाउन के आर्थिक प्रभाव को दूर करने के लिए सरकार ने प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना के तहत 1.70 लाख करोड़ रुपए के राहत पैकेज की घोषणा की। इस योजना के तहत पांच महीनों तक 80 करोड़ से अधिक लोगों को प्रति माह 5 किलोग्राम मुफ्त गेहूं /चावल और प्रति परिवार एक किलोग्राम साबुत चना मुफ्त दिया जाएगा।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन

स्वास्थ्य राज्य का विषय है। केंद्र सरकार स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने में प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी के इलाज के लिए विभिन्न योजनाओं के माध्यम से राज्य सरकारों के प्रयासों को सहायता देती है।[27]योजनाओं तक पहुंच की समस्याओं के अलावा, मजबूरन अस्वच्छ, मलिन बस्तियों में रहने वाले प्रवासियों पर विशेष रूप की स्वास्थ्य समस्याओं का जोखिम पहले से ही रहता है। इसी कारण से शहरी प्रवासियों पर संचारी रोगों का खतरा अधिक होता है। उचित मात्रा में प्रजनन सम्बन्धी देखभाल और बच्चों के स्वास्थ्य के प्रति सजगता की भी कमी होती है। महिलाएं विशेष रूप से यौन शोषण के खतरा का भी सामना करती हैं। मानसिक तनाव और काम के दौरान होने वाली दुर्घटनाओं का खतरा भी अधिक होता है।[28]

सरकारी अस्पतालों में मूल निवासी या प्रवासी रोगियों में भेद नहीं किया जाता, विशेषकर प्रवास गंतव्यों पर। फिर भी, कभी-कभी पहुंच और भाषा स्वास्थ्य सुविधाएं मिलने में प्रवासियों के लिए बाधा के रूप में कार्य करती है। उसी प्रकार, कारखानों, निर्माण स्थलों, आदि के आसपास रहने वाले प्रवासी स्वास्थ्य टीमों के लिए दुर्गम हो सकते हैं। बच्चे अक्सर टीकाकरण से वंचित रह जाते हैं, यद्यपि यह मुफ्त दिया जाता है फिर भी प्रवासी परिवार उस तक पहुंच नहीं पाता, जो अपने मूल स्थान पर पहुंचा होता। गंतव्य स्थलों पर यह समस्याएं अपवाद नहीं बल्कि नियमित हैं।

बीड के प्रवासियों ने कहा कि डॉक्टर की मुफ्त सेवाएं (पीएचसी में) गंतव्य पर उपलब्ध नहीं है; यह आवश्यकता पड़ने पर डॉक्टरों के पास जाने से हतोत्साहित करता है। मूल गांव के विपरीत गर्भवती महिलाओं को गंतव्य पर टीका और बाद की जांच उपलब्ध नहीं होती। पांच साल से कम उम्र के बच्चे सबसे अधिक

प्रभावित होते हैं और प्रवास के दौरान टीकाकरण से चूक जाते हैं। सहभागी अनुसंधान के दौरान एक आंगनवाड़ी शिक्षिका ने बताया कि उनके केंद्र में कुल 140 बच्चों में से 0-6 वर्ष की आयु के लगभग 28 बच्चे विस्थापित हुए हैं।

सुंदरबन के प्रवासियों ने सिलिकोसिस जैसे व्यावसायिक जोखिमों की ओर इशारा किया। हालांकि, मौसमी प्रवासी विकल्प के अभाव में स्वास्थ्य जोखिम उठाते रहते है।

शिक्षा:

शिक्षा का अधिकार कानून, 2009 (RTE), 6-14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों - प्रवासी श्रमिकों के बच्चों सहित - को समान गुणवत्ता की मुफ्त और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का अधिकार प्रदान करता है। आरटीई अधिनियम के प्रावधानों को समग्र शिक्षा के माध्यम से कार्यान्वित किया जाता है, जो सर्व शिक्षा अभियान, राष्ट्रीय मध्यम शिक्षा अभियान (आरएमएसए), और टीचर्स एजुकेशन (टीई) की पूर्ववर्ती प्रायोजित योजनाओं का समावेश है।

अलग-अलग अवधि के लिए मौसमी प्रवासन की समस्याओं से निपटने हेतु राज्य सरकारें केंद्र द्वारा समग्र शिक्षा के तहत समर्थित विभिन्न रणनीतियों का उपयोग कर रही है।[29] सभी राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों को प्रतिवर्ष घरेलू सर्वेक्षण/घरेलू सर्वेक्षण करना अनिवार्य है ताकि उन बच्चों का पता लग सके जो स्कूल नहीं जा रहे। ये सर्वेक्षण अपने परिवारों के पलायन से प्रभावित बच्चों के बारे में भी जानकारी एकत्र करते हैं। इन बच्चों की प्राथमिक शिक्षा को सुनिश्चित करने के लिए समग्र शिक्षा के तहत, योजना के मानदंडों के अनुसार, विभिन्न कदम उठाए जाते हैं, जैसे कि परिवारों के पलायन की अवधि के दौरान गांवों में छात्रावासों/आवासीय शिविरों का प्रावधान; स्कूल न जाने वाले, ड्रॉपआउट और प्रवासी बच्चों के लिए आवासीय और गैर-आवासीय प्रशिक्षण केंद्र, मध्यान्ह भोजन (मिड डे मील), मुफ्त पाठ्य पुस्तकों और यूनिफार्म का प्रावधान इत्यादि।

एनडीएमए, 2005, आपदाओं के प्रभावी प्रबंधन और एनडीएमए और एसडीएमए की स्थापना के लिए राशि प्रदान करता है। प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री क्रमशः राष्ट्रीय और राज्य स्तरीय प्राधिकरण के अध्यक्ष (पदेन) होते हैं। अधिनियम में यह भी उल्लेख किया गया है कि निवारक, तैयारी संबधी, क्षमता निर्माण, और बजट की आवश्यकताओं को अपने स्थान पर रखा जाना चाहिए। इन योजनाओं को राज्य और केंद्र सरकार की विभिन्न योजनाओं के माध्यम से वित्तपोषित किए जाने की अपेक्षा है। ज्यादातर ध्यान आपदा स्थल पर राहत कार्य और प्रवास करने को मजबूर लोगों की चिंताओं के समाधान पर रहता है। उनके पुनर्वास या गंतव्य पर समर्थन की चिंताओं के बारे में अधिनियम में कोई उल्लेख नहीं हैं।

7.13 राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण

आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005 (DM अधिनियम, 2005) के लागू होने के बाद, भारत सरकार (GOI) ने देश में आपदा प्रबंधन (DM) के लिए शीर्ष निकाय के रूप में राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (NDMA) का गठन किया, इस आदेश के साथ कि वह अन्य कार्यों के अलावा आपदा प्रबंधन पर नीतियां और दिशानिर्देशों को निर्धारित करे। राष्ट्रीय स्तर पर एनडीएमए का प्रयास पूर्ववर्ती राहत-केंद्रित और पोस्ट-इवेंट सिंड्रोम के प्रतिमान से हटकर सक्रिय रोकथाम, शमन और तैयारी-संचालित

आपदा प्रबंधन के तरफ आना है। एनडीएमए ने बाढ़ और सूखे के खतरे को कम करने की योजना बनाने के लिए बाढ़ और सूखा प्रबंधन दिशानिर्देश तैयार किए हैं।

7.14 जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना और राज्य-स्तरीय कार्य योजनाएं:

जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना ऐसे उपायों की पहचान करती है जो विकास के उद्देश्यों को बढ़ावा देते हुए, साथ ही साथ जलवायु परिवर्तन का प्रभावी ढंग से सामना करें। यह भारत के विकास और जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन (एडाप्टेशन) और शमन (मिटिगेशन) के उद्देश्यों को एक साथ आगे बढ़ाने के लिए कई कदमों की रूपरेखा देता है।

7.15 कंस्ट्रक्शन वर्कर्स वेलफेयर फण्ड:

निर्माणकर्मी कल्याण कोष का गठन राज्यों/केंद्रशासित प्रदेशों द्वारा केंद्र सरकार के भवन एवं अन्य निर्माण से जुड़े श्रमिकों (नियोजन तथा सेवा शर्तों का विनियमन) अधिनियम, 1996 के तहत किया जाता है।

राज्य/ केंद्रशासित प्रदेश निर्माण परियोजनाओं पर उपकर एकत्र करते हैं और वह राशि श्रमिकों के लिए कल्याण कोष में जमा की जाती है। विभिन्न राज्य सरकारों ने प्रवासियों को विकास के लाभ पहुंचाने के लिए इस निधि का उपयोग किया है। हांलांकि, इन योजनाओं के बारे में जागरूकता की कमी दिखाई देती है। WP (सिविल) संख्या 318/2006 में सर्वोच्च न्यायालय की निगरानी के बावजूद, सीडब्ल्यूडब्ल्यूबी उपकर द्वारा वित्तपोषित योजनाओं में कार्यान्वयन-संबंधी गंभीर कमियों को उजागर किया गया है। वर्किंग ग्रुप ऑन माइग्रेशन का सुझाव है कि श्रम एवं रोजगार मंत्रालय राज्यों को सीडब्ल्यूडब्ल्यूबी उपकर से एकत्रित राजस्व के बेहतर उपयोग के काम में लगाए, जिसके अंतर्गत वह निर्माण-सबंधी क्षेत्रों के श्रमिकों को भी इसमें शामिल करे और सामाजिक सेवाओं और आवास के प्रावधान करें।

7.16 राज्य स्तरीय संस्थागत संरचना:

राज्य स्तर पर, आपदा प्रबंधन एजेंसियां और प्राधिकरण अलग-अलग राज्यों में भिन्न होते हैं; हालाँकि, वह डेटा, सूचना, नीति और बजटीय आवश्यकताओं को साझा करने के लिए राष्ट्रीय स्तर की एजेंसियों के साथ मिलकर काम करते हैं। हर राज्य में एक राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (एसडीएमए) है, जिसकी अध्यक्षता मुख्यमंत्री करते हैं। इसी तरह, राज्य कार्यकारी समितियां, बाढ़ नियंत्रण बोर्ड, जिला आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (डीडीएमए), आदि। राज्यों में एक स्टेट सेंटर फॉर क्लाइमेट चेंज भी है जिसकी उच्च-स्तरीय समिति की अध्यक्षता राज्य के मुख्यमंत्री करते हैं।

7.17 सन्दर्भ

1 Mishra A, 2014, An Assessment of Climate Change Natural Disaster Linkage in Indian Context. J Geol Geosci:167.
2 An Analysis of Physical and Monetary Losses of Environmental Health and Natural Resources in India
3 UNHCR report on Climate change and disaster displacement Key Messages on international protection COP 24 - Katowice, Poland (page 2) https://www.unhcr.org/5c0172f24.pdf.
4 https://reliefweb.int/report/india/climate-migrants-lead-mass-migration-india-s-cities
5 Migration and Climate Change, IOM, 2018
6 https://in.one.un.org/page/decent-work-for-migrant-workers-in-india/
7 Report of Working Group on Migration, Ministry of Housing and Urban Poverty Alleviation, Government of India (January 2017)
8 Information was given by Shri Santosh Kumar Gangwar, Union Minister of State (I/C) for Labour and Employment, in a written reply to a question in Lok Sabha on 06th August 2018.
9 Impact of mgnrega on rural-urban migration: A case study of Jharkhand, Journal of Economic & Social Development, Vol. - XIII, No. 2, Dec. 2017
10 Jacob, N. (2008), The Impact of NREGA on Rural-Urban Migration: Field survey of Villupuram District, Tamil Nadu, Working Paper 202, New Delhi: Centre for Civil Society
11 PIB, Government of India, 31st July 2017
12 https://economictimes.indiatimes.com/news/politics-and-nation/200-days-of-work-under-mgnrega-in-drought-hit-odisha/articleshow/49028514.cms?from=mdr
13 https://www.hindustantimes.com/india-news/to-arrest-distress-migration-odisha-to-provide-200-days-of-work-under-mgnrega/story-LjYH6bFH46CRvGwfhXIjbI.html
14 http://pmksy.gov.in/MicroIrrigation/Archive/GuidelinesMIRevised250817.pdf
15 Report of the Committee on Doubling Farmer's Income, Volume V, Sustainability Concerns in Agriculture (November 2017), Department of Agriculture, Cooperation and Farmers' Welfare, Ministry of Agriculture & Farmers' Welfare.
16 Critical Policy Interventions to Fast Forward Micro Irrigation in India, TERI (August 2019)
17 Accelerating growth of Indian Agriculture: Micro Irrigation as an Efficient Solution
18 Circular of Ministry of Agriculture and Farmers Welfare, Government of India dated 2nd May 2019.
19 Independent Assessment of Design, Strategies, and Impacts of DAY-NRLM, IRMA, 2017
20 https://pmfby.gov.in/pdf/Revised_Operational_Guidelines.pdf
21 https://pmfby.gov.in/pdf/FINAL_WBCIS_OGs_23.03.2016.pdf
22 https://www.downtoearth.org.in/news/agriculture/maharashtra-rejects-more-agri-insurance-claims-even-as-farm-suicides-double-63524
23 https://www.downtoearth.org.in/news/agriculture/pradhan-mantri-fasal-bima-yojana-is-a-good-scheme-with-flawed-executive-says-cse-58330
24 https://www.indiaspend.com/key-scheme-for-migrants-food-security-could-stumble-for-lack-of-accurate-data/
25 https://www.thehindu.com/news/national/what-is-ration-card-portability/article 29363067.ece
26 https://www.downtoearth.org.in/blog/governance/one-nation-one-ration-card-and-the-hurdles-ahead-65615
27 https://pib.gov.in/Pressreleaseshare.aspx?PRID=1542736
28 https://ijme.in/articles/health-equity-for-internal-migrant-labourers-in-india-an-ethical-perspective/?galley=html
29 Information provided by the Union Minister for Human Resource, Dr. Ramesh Pokhriyal' Nishank' in a written reply in the RajyaSabha on 27th June 2019.
30 https://pmaymis.gov.in/PDF/HFA_Guidelines/hfa_Guidelines.pdf
31 https://economictimes.indiatimes.com/news/economy/policy/rented-houses-for-migrant-labourers-in-metros-soon/articleshow/69834563.cms
32 https://www.business-standard.com/budget/article/modi-s-housing-for-all-means-nothing-for-country-s-100-mn-migrant-workers-118021200093_1.html
33 https://www.indiatoday.in/education-today/news/story/pradhan-mantri-shram-yogi-maan-dhan-assures-monthly-pension-for-informal-workers-1459001-2019-02-18
34 https://pmayg.nic.in/netiay/Uploaded/English_Book_Final.pdf
J1 Important to add for each of the commitments mentioning here whether India is a signatory or not.

8 निष्कर्ष और सुझाव

मार्च 2020 के अंतिम सप्ताह में कोरोनोवायरस महामारी के कारण राष्ट्रव्यापी लॉकडाउन के अचानक लागू होने से सैकड़ों-हजारों प्रवासी कामगारों को अपना रोज़गार खोना पड़ा, जिनमें ज्यादातर दिहाड़ी मज़दूर थे। सीमित रोजगार के अवसरों और सर पर मंडराते वित्तीय संकट के कारण हजारों प्रवासी श्रमिक अपने मूल गांवों में लौटने लगे।

विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार, COVID-19 के कारण 4 करोड़ से अधिक आंतरिक प्रवासी प्रभावित हुए हैं, और कुछ दिनों की अवधि में लगभग 50,000-60,000 व्यक्ति शहरी से ग्रामीण क्षेत्रों में विस्थापित हो गए। यह रिवर्स माइग्रेशन किसी भी अंतर्राष्ट्रीय विस्थापन से ढाई गुना अधिक बताया गया।[1]

अचानक हुआ यह रिवर्स माइग्रेशन इतना बड़ा था कि भारत सरकार के सर्वोत्तम प्रयास भी इस संकट का पूरी तरह सामना नहीं कर सके। अधिकारियों ने वंचित प्रवासियों के लिए आश्रयों और क्वारंटाइन सेंटर्स विकसित किए और एक समय पर 600,000 प्रवासियों की देखभाल की। केंद्र सरकार की वन नेशन, वन राशन कार्ड योजना विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा मुफ्त राशन योजना के अंतर्गत लाख से अधिक व्यक्तियों को भोजन प्रदान किया गया। इसके बावजूद, लाखों प्रवासियों तक सरकारी सहायता अभी तक नहीं पहुंच पाई है।[2]

इस अध्ययन में स्रोत गांवों और जिलों में सुसंगत नीतिगत हस्तक्षेपों की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया है जिस से निवासियों में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को सहने की क्षमता बढ़े और उन्हें प्रवास के लिए मजबूर न होना पड़े। जलवायु परिवर्तन पहले से ही प्रवास का एक प्रमुख कारण है। जब तक स्रोत गांवों और जिलों में पर्याप्त और प्रभावी उपाय नहीं किए जाते, तब तक अधिक से अधिक लोग आजीविका के लिए अपने घरों से प्रवास करते रहेंगे।

केंद्र सरकार द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम और योजनाएं विभिन्न क्षेत्रों में ऐसा करने के लिए एक प्रभावी उपाय हो सकती हैं। कुछ क्षेत्रों में राज्य का विषय होने के बावजूद, केंद्र सरकार के विभागों /मंत्रालयों ने इन योजनाओं को समान रूप से अमल में लाते हुए भेदभाव को दूर किया है। मेक इन इंडिया, शहरी आवास, शहरी स्वास्थ्य और सार्वजनिक शिक्षा कार्यक्रम ऐसे कुछ उदाहरण हैं। फिर भी प्रवासियों तक इन कार्यक्रमों की पहुँच सीमित है। केंद्र सरकार की नीतियों की गहन समीक्षा करने की आवश्यकता है ताकि वह प्रवासियों के लिए सुलभ और सुगम हो सकें।

उत्तराखंड और महाराष्ट्र से सहभागी अनुसंधान अध्ययन यह पुष्ट करते हैं कि पानी जलवायु परिवर्तन अनुकूलन के लिए सबसे महत्वपूर्ण है। अल्पकालिक अनुकूलन की सबसे बड़ी संभावना सतह और भूजल आपूर्ति के कुशल और एकीकृत प्रबंधन में निहित है। ड्रप्स (माइक्रो) सिंचाई, वर्षा जल संचयन, भूजल पुनर्भरण और पानी की रीसाइक्लिंग जैसी कुछ जल बचाव की तकनीकों को प्रोत्साहित करना और नहर प्रणालियों में जल के नुकसान को कम करना आदि कुछ अनुकूलन के विकल्प बन सकते हैं। कुछ मिट्टी और फसल प्रबंधन पद्धतियां हैं: संरक्षण कृषि, जुताई रहित या कम जुताई कृषि, कंटूर बन्डिंग, सीढ़ीदार खेती, पलवार (मल्चिंग); मिट्टी के क्षरण और पानी के नुकसान का नियंत्रण और साथ ही साथ मिट्टी द्वारा पानी को सोखने (सॉइल इन्फिल्ट्रेशन) दर में वृद्धि। इन पद्धतियों को प्रभावी जल प्रबंधन के विकल्पों के रूप में अपनाया जा सकता है।[3]

राज्य की जलवायु परिवर्तन पर कार्य योजना इन उपायों के महत्व को समझती है। हालांकि, अनुदान की कमी के कारण यह उपाय कागज पर बने रहते हैं या बहुत छोटे पैमाने पर लागू होते हैं। जलवायु परिवर्तन से अनुकूलन की क्षमताओं के विकास के लिए सहभागी जलसंभर (वॉटरशेड) प्रबंधन की ओर पारितंत्र-आधारित दृष्टिकोण की आवश्यकता है। यह प्राकृतिक संसाधन आधार को बेहतर बनाता है जिसके इर्द-गिर्द विकास के अन्य आयाम स्थापित किए जा सकते हैं,[4] विशेष रूप से देश के अर्ध-शुष्क और शुष्क क्षेत्रों में। नियोजन और कार्यान्वन दोनों स्तरों पर जलसंभरण कार्यक्रम में लोगों की समान भागीदारी, जिसमें वित्तीय या अन्य किसी तरह का योगदान भी सम्मिलित है, जलसंभरों की दीर्घकालिक स्थिरता की क्षमता में बढ़ोत्तरी सुनिश्चित करेगी।[5]

राहत और बचाव कार्य आमतौर पर राष्ट्रीय आपदा राहत और राज्य आपदा राहत कोष से समर्थित होते हैं। ये कोष आम तौर पर अपर्याप्त होते हैं। दिशानिर्देश यह सुझाते हैं कि राज्य सरकार अन्य

विकास योजनाओं, जैसे जल संरक्षण कार्यक्रमों, को राहत योजनाओं के साथ जोड़े। ऐसा करने से राहत कार्यों के लिए धन की उपलब्धता को बढ़ेगी और एक बड़े कार्यबल के लिए या अधिक अवधि के लिए रोजगार उत्पन्न होंगे (मैनुअल फॉर ड्राउट मैनेजमेंट)। किसी क्षेत्र को पूर्व-आपदा स्तरों पर वापस लाने में राहत कार्य को कई साल लग सकते हैं। सुंदरबन, पश्चिम बंगाल और केंद्रपाड़ा, ओडिशा से सहभागी अनुसंधान इस बात को रेखांकित करते हैं कि बुनियादी ढांचों की स्थिति भयावह बनी हुई है, और पूर्व-आपदा स्तरों पर लौटने में कई साल लग सकते हैं। सरकार से मिलने वाली सहायता भी अपर्याप्त है। इसलिए, ऐसे क्षेत्रों के लिए विशेष प्रावधानों की आवश्यकता है, विशेष रूप से उन क्षेत्रों के लिए जो बार-बार आपदाओं से प्रभावित होते रहते हैं।

स्थानीय सरकार, यानी नगर पालिका और ग्राम पंचायतें, लोगों के सबसे निकट होती है। इसलिए, उन्हें आपदाओं के दौरान प्रवासी परिवारों के संरक्षक के रूप में कार्य करना चाहिए, कार्यक्रमों को लागू करना चाहिए, लाभार्थियों का चयन आदि करना चाहिए। चूंकि जलवायु परिवर्तन से देश के कई हिस्सों में पानी की भारी कमी होने की संभावना है, इसलिए पर्याप्त आपूर्ति और उपलब्ध जल संसाधनों के कुशल उपयोग को सुनिश्चित करने के लिए अधिक से अधिक मात्रा में अनुकूलन के प्रयासों की आवश्यकता होगी।[6] केंद्र सरकार जल संरक्षण पर ध्यान दे रही है। जल संरक्षण, ड्राउट-प्रूफिंग और संभावित प्रवासी परिवारों को रोज़गार दिलाने के लिए इस योजना का कितने प्रभावी ढंग से प्रयोग किया जा सकता है इसका निर्धारण बहुत हद तक ग्राम पंचायतों में इन घटकों के लिए किए गए नियोजन द्वारा तय किया जाएगा।

ग्राम पंचायत विकास योजना (GPDP) पूरे देश में आरंभ की जा रही है जिसके अंतर्गत आगामी प्रवासी परिवारों हेतु प्रवासियों की श्रम-शक्ति के नियोजन को भी प्रभावी रूप से शामिल करने की आवश्यकता है। राज्यस्तरीय और राष्ट्रीय कार्यक्रमों के प्रावधानों का विस्तार करते समय, सरकारों को जलवायु कारकों के कारण विस्थापित हुए परिवारों और आवासों को भी ध्यान में रखना चाहिए। ओडिशा की केस स्टडी उन परिवारों की स्थिति को दर्शाती है जो जलवायु प्रेरित कारकों के कारण विस्थापित हुए हैं। राज्य और राष्ट्रीय स्तर की नीतियों में प्रावधान हैं, लेकिन प्रायः यह प्रावधान भौगोलिक स्थितियों पर आधारित होते हैं। पुनर्वासित परिवारों को संपत्ति की हानि और वार्षिक आय के नुकसान की दोहरी मार झेलनी पड़ती है। नीति को सुनिश्चित करना चाहिए कि अन्य जिलों में भी जलवायु परिवर्तन से प्रतिकूल रूप से प्रभावित गांवों तक कार्यक्रम की पहुंच हो।

जैसे-जैसे पुरुष प्रवास कर हैं और महिलाएँ कृषि में निर्णायक भूमिका में आ रही हैं, इन योजनाओं और नियोजन प्रक्रियाओं के विस्तार में इन सामाजिक बदलावों को समाहित करने की आवश्यकता बढ़ रही है। सभी पांच स्थानों में सहभागी अनुसंधान कृषि के बढ़ते महिलाकरण को रेखांकित करते हैं। महिलाओं पर बोझ बढ़ रहा है। इस परिवर्तन का प्रभाव सूक्ष्म-स्तर पर सामाजिक संरचनाओं पर पड़ेगा और यह समष्टि अर्थशास्त्र को भी प्रभावित करेगा, जैसे विकास कार्यों के लिए श्रम शक्ति की उपलब्धता। इसलिए, कृषि और अन्य विकास नीतियों के अधिक प्रभावी कार्यान्वयन के लिए इन पहलुओं को शामिल करना ज़रूरी होगा।

मौसम में बदलावों के लिए तैयार रहना महत्वपूर्ण है। यह आवश्यक है कि जलवायु-प्रत्यास्थी कृषि पद्धतियों को एक पैकेज के रूप में वर्तमान में चल रहे कार्यक्रमों से एकीकृत किया जाए, जिसमें मौसम आधारित स्थान-विशिष्ट कृषि परामर्श, आकस्मिक फसल योजना, लो-एक्सटर्नल इनपुट तकनीक को प्रोत्साहित करना, और जल बजट विधि; आजीविका का विविधीकरण और स्थानीय कृषि-जैव विविधता को बढ़ावा देना आदि सम्मिलित हों। यह सब एक साथ मिलकर न केवल संसाधनों की गुणवत्ता में सुधार करेंगे बल्कि कृषक समुदाय की जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को सहने की क्षमता में भी वृद्धि करेंगे।[7] कृषि को आकर्षक और लाभदायक पेशा बनाने के लिए ग्रामीण युवाओं को इसकी विविध गतिविधियों में संलग्न करने की आवश्यकता है।[8]

चक्रवातों से बर्बाद हुए समुदाय में विभिन्न प्रकार के जलवायु प्रभाव प्रतिरोधी (क्लाइमेट रिज़िलिएंट) धान की मांग अधिक है। इसी प्रकार, सुंदरबन की फसल प्रणाली में जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों का सामना करने के लिए सिंचाई की सुविधा, विविधतापूर्ण खेती -- जिसमें मछली पालन, पशुपालन और उद्यान कृषि का बेहतर तालमेल और जुड़ाव हो -- आदि कुछ

अनुकूलन के उपाय हो सकते हैं। जैविक कृषि को प्रोत्साहन, विशेषकर उत्तराखंड में, महिला किसानों के बाजार तंत्रों द्वारा समर्थित होना चाहिए।

सन्दर्भ

1 World Bank COVID-19 Crisis Through a Migration Lens. Migration and Development Brief, no. 32; World Bank, Washington,DC©WorldBank.2020. https://openknowledge.worldbank.org/handle/10986/33634
2 COVID-19 Sets off Mass Migration in India : Richa Mukhra, Kewal Krishan, and Tanuj Kanchan. https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC7275149/
3 Report of the Committee on Doubling Farmer's Income, Volume V, Sustainability Concerns in Agriculture (November 2017), Department of Agriculture, Cooperation and Farmers' Welfare, Ministry of Agriculture & Farmers' Welfare.
4 Watershed Organisation Trust (2013): Towards Resilient Agriculture in a Changing Climate Scenario, December 2013
5 Report of the Committee on doubling Farmer's Income, Volume V, Sustainability Concerns in Agriculture (November 2017), Department of Agriculture, Cooperation and Farmers' Welfare, Ministry of Agriculture & Farmers' Welfare.
6 Report of the Committee on Doubling Farmer's Income, Volume V, Sustainability Concerns in Agriculture (November 2017), Department of Agriculture, Cooperation and Farmers' Welfare, Ministry of Agriculture & Farmers' Welfare.
7 Watershed Organisation Trust (2013): Towards Resilient Agriculture in a Changing Climate Scenario, December 2013
8 Nawab Ali, Checking rural migration through enhancing farmers income and improving their living conditions, Indian Farming 68(01): 07–11; January 2018

9 अनुलग्नक 1- सुंदरबन में साक्षात्कार और साइटें

यह रिपोर्ट क्षेत्रीय दौरों और टेलीफोनिक साक्षात्कारों दोनों के आधार पर तैयार की गई है। क्षेत्र में एफजीडी (फोकस्ड ग्रुप डिस्कशन) और व्यक्तिगत साक्षात्कार दोनों लिए गए। 25 जनवरी 2020 से 08 फरवरी 2020 तक तीन बार क्षेत्र का दौरा किया गया; जबकि टेलीफोनिक साक्षात्कार 15 जनवरी से 24 अप्रैल, 2020 के बीच आयोजित किए गए थे।

कुछ लोग जिनसे परामर्श किया गया।

पश्चिम सुंदरबन:

- बिंदु 1 - जिबोनताला और रुद्रनगर ग्राम पंचायत, सागर आइलैंड, सागर ब्लॉक, दक्षिण 24 परगना जिला, पश्चिम बंगाल, भारत
- बिंदु 2 - शिबपुर गांव और धबलात गांव, सागर आइलैंड, सागर ब्लॉक, दक्षिण 24 परगना जिला, पश्चिम बंगाल, भारत
- बिंदु 3– मौसुनी आइलैंड
- बिंदु 4- मिनाखान ब्लॉक

पूर्वी सुंदरबन:

- बिंदु 1 - छोटामोल्लाखली आइलैंड, गोसाबा ब्लॉक, दक्षिण 24 परगना जिला, पश्चिम बंगाल, भारत
- बिंदु 2 - बाली 1, गोसाबा ब्लॉक, दक्षिण 24 परगना जिला, पश्चिम बंगाल, भारत

साइट - बिंदु 1 पश्चिम सुंदरबन के अंतर्गत प्रवास के लिए स्रोत और गंतव्य दोनों है; जबकि बाकी केवल स्रोत हैं; सभी ग्रामीण हैं।

पश्चिम सुंदरबन प्रतिभागी:

एक फोकस्ड ग्रुप डिस्कशन (FGD) जिसमें राजेद खान (आयु - 60 वर्ष), सुशील माली (70 वर्ष), रतन मैते (30 वर्ष), शेख अबुल कलाम (42 वर्ष), सुधाम डोलुई (आयु-55 वर्ष), तपन भुइयां (आयु-४९ वर्ष), मोमेना बीबी (उम्र-५५ वर्ष), असीम भुइयां (आयु-४५ वर्ष), स्वपन भुइयां (आयु-५४ वर्ष), शेख जैनल (आयु-६० वर्ष), रशीदा बीबी (आयु-३८ वर्ष)), जरीना बीबी (आयु-35 वर्ष), सुकेश मंडल (40) शामिल थे; इनमें से अधिकतर ने सागर पलायन किया जब उनके मूल स्थान - लोहाचारा और घोरमारा आइलैंड - रहने लायक नहीं रह गए थे।

व्यक्तिगत - तपन जाना (50), शिबपुर गांव, सागर आइलैंड, सागर ब्लॉक, दक्षिण 24 परगना जिला, पश्चिम बंगाल, भारत

व्यक्तिगत - कबिता मैते (40+), धबलात क्षेत्र, सागर आइलैंड, सागर ब्लॉक, दक्षिण 24 परगना जिला, पश्चिम बंगाल, भारत

व्यक्तिगत - एस. के. अदालत (35+), मौसुनी आइलैंड, दक्षिण 24 परगना जिला, पश्चिम बंगाल, भारत

पूर्वी सुंदरबन:

प्रतिभागी – साक्षात्कार

व्यक्तिगत - अनिल मिस्त्री (45), बाली 1, गोसाबा ब्लॉक, दक्षिण 24 परगना जिला, पश्चिम बंगाल, भारत

व्यक्तिगत - गोपाल मंडल (40), छोटामोल्लाखली, गोसाबा ब्लॉक, दक्षिण 24 परगना जिला, पश्चिम बंगाल, भारत

अधिकारी/विशेषज्ञ जिनसे परामर्श किया:

मनरुराम पाखीरा, सुंदरवन मामलों के विभाग के मंत्री, पश्चिम बंगाल सरकार

बंकिम हाजरा, अध्यक्ष, सुंदरवन विकास बोर्ड, पश्चिम बंगाल सरकार

प्रो सुगाता हाजरा, प्रोफेसर, जाधवपुर विश्वविद्यालय

प्रो तुहिन घोष, प्रोफेसर, जाधवपुर विश्वविद्यालय

डॉ अनुराग डंडा, वरिष्ठ शोधकर्ता, ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन

डॉ नीलांजन घोष, आर्थिक सलाहकार, डब्ल्यूडब्ल्यूएफ इंडिया और क्षेत्रीय निदेशक, ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन

डॉ अमलेश मिश्रा, कृषि विशेषज्ञ

श्री सुभाष आचार्य, सुंदरवन मामलों के विभाग के सेवानिवृत्त विशेषज्ञ

इनके अलावा, विभिन्न प्रकाशित पेपर, रिपोर्ट, पश्चिम बंगाल सरकार की प्रकाशित और अप्रकाशित रिपोर्ट, द टेलीग्राफ, द थर्ड पोल, हफिंगटन पोस्ट और इंडिया क्लाइमेट डायलॉग से प्रासंगिक समाचार लेखों का भी वर्णन को विकसित करने में उपयोग किया गया है।

भारत में जलवायु-प्रेरित विस्थापन और पलायन

पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, ओडिशा, उत्तराखंड और बिहार की कहानियां

actionaid

एक्शन एड एक वैश्विक आंदोलन है जिसमें कई लोग एक साथ सभी के लिये समुचित मानवाधिकार हासिल करने और ग़रीबी को हराने के लिये काम कर रहे हैं। हमें विश्वास है कि ग़रीबी में रह रहे लोगों में खुद अपने और परिवार तथा समुदाय के लिये बदलाव लाने की शक्ति है। एक्शन एड इस बदलाव में एक उत्प्रेरक है।

http://actionforglobaljustice.actionaid.org

अंतर्राष्ट्रीय पंजीयन नंबर: 27264198

वेबसाइट: www.actionaid.org

टेलीफोन: +27 11 731 4500

फैक्स: +27 11 880 8082

ई-मेल: mailjhb@actionaid.org

एक्शनएड इंटरनेशनल पता:

ActionAid International Secretariat,
Postnet Suite 248, Private Bag X31,
Saxonwold 2132, Johannesburg, South Africa.

CANSA
CLIMATE ACTION NETWORK
South Asia

क्लाइमेट एक्शन नेटवर्क – साउथ एशिया (CANSA) दक्षिण एशिया में फैले 150 से अधिक संगठनों का समूह है। हम प्रभावी जलवायु परिवर्तन नीतियों और उनके क्रियान्वयन द्वारा दक्षिण एशिया में और वैश्विक स्तर पर बराबरी और सतत विकास को बढ़ावा देते हैं।

KvK नंबर नीदरलैंड में : 55304583

वेबसाइट: www.cansouthasia.net

ई-मेल: info@cansouthasia.net

Climate Action Network – South Asia c/o Bangladesh Centre for Advance Studies,
Rd No 16/A, Dhaka, Bangladesh.

जनवरी 2021